हिन्दी त्रैमासिक
विवेक-ज्योति
वर्ष ३५ अंक ३

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी त्रैमासिक

जुलाई–अगस्त–सितम्बर

◆ १९९७ ◆

प्रबन्ध सम्पादक तथा व्यवस्थापक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वार्षिक २०/- | वर्ष ३५ अंक ३ | एक प्रति ६/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क (२५ वर्षों के लिए) ३००/-

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम

रायपुर – ४९२ ००१ (म.प्र.)

दूरभाष २२५२६९, ५४४९५९, २२४११९

विवेक-ज्योति के आजीवन सदस्य

(१११वीं तालिका)

४८२८. श्री व्ही. जी. बोबडे, बैतूल (म.प्र.)
४०२९. श्रीमती दमयंती आर. चौहान, अहमदाबाद (गुज.)
४०३०. श्री तुलसी दास नैनवानी, भोपाल (म.प्र.)
४०३१. श्री विवेक शाह, अहमदाबाद (गुज.)
४०३२. श्री विष्णुधारी प्रसाद गिद्दार, हजारीबाग (बिहार)
४०३३. श्रीमती प्रभा निगम, खायरोद, उज्जैन (म.प्र.)
४०३४. प्राचार्य, महिला महाविद्यालय, जोधपुर (राज.)
४०३५. डॉ. एस. एन. शुक्ला, यू.एस.ए. (अमेरिका)
४०३६. श्रीमती राजकुमारी कुमार, दिल्ली
४०३७. श्रीमती प्रभादेवी, अकोला (महाराष्ट्र)
४०३८. अडुकिया कन्सलटेण्ट्स प्राइवेट लिमिटेड, मुम्बई (महाराष्ट्र)
४०३९. श्री रामगोपाल माहेश्वरी, नागपुर (महाराष्ट्र)
४०४०. श्रीमती सरला श्रीवास्तव, अहमदाबाद (गुज.)
४०४१. श्री एस. के. मुण्दड़ा, जामनगर (गुज.)
४०४२. श्री पंकज शारदानंद ज्ञान आश्रम, सितलदह, बिलासपुर (म.प्र.)
४०४३. श्रीमती शीला अग्रवाल, इन्दौर (म.प्र.)
४०४४. श्री हरीश जेठवा, झपतपुर, खडगपुर (पं. बंगाल)
४०४५. श्री अशोक ओझा, इन्दौर (म.प्र.)
४०४६. सुश्री कुसुमबेन पटेल, 'अम्बिका' इन्दौर (म.प्र.)
४०४७. श्री श्रींगेरी शारदा संस्था, नई दिल्ली
४०४८. श्री मनीष कुमार परमार, फाफाडीह, रायपुर (म.प्र.)
४०४९. श्री बालकृष्ण दास, उज्जैन (म.प्र.)
४०५० श्री भरत खण्डेलवाल, इन्दौर (म.प्र.)
४०५१. श्री सुनील कुमार गहरवाल, बीर, खण्डवा (म.प्र.)
४०५२ श्री सुदर्शन लाल श्रीवास्तव, जगदलपुर, बस्तर (म.प्र.)
४०५३ श्री अर्जुन अग्रवाल, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)
४०५४. श्री रितुपर्ण शुक्ला, युक्रेन
४०५५. श्री मनोज सेलोर, बड़ोदरा (गुजरात)
४०५६. श्री राकेश कुमार माहेश्वरी, इन्दौर (म.प्र.)
४०५७. श्री बक्शी पुस्तकालय, राजनांदगांव (म.प्र.)
४०५८. राजेश कुमार, कलकत्ता (पं. बंगाल)

अपील

श्रीरामकृष्ण मठ
मयलापुर,
चेन्नै - ६०० ००४

श्रीरामकृष्ण का सार्वभौमिक मन्दिर

प्रिय मित्रो,

स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा से १८९७ ई. में इस मठ की स्थापना हुई। यह अपने बहु-आयामी सेवाओं के सौ वर्ष पूरे कर चुका है। भक्तों तथा अनुरागियों की काफी काल से चली आ रही हार्दिक इच्छा की पूर्ति के लिए मठ-परिसर में श्रीरामकृष्ण के एक भव्य मन्दिर का निर्माण का कार्य हाथ में लिया गया है। रामकृष्ण संघ के वर्तमान अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज ने १ दिसम्बर, १९९४ ई. को इस मन्दिर का शिलान्यास हुआ और इसका निर्माण-कार्य प्रगति पर है। श्रीरामकृष्ण समन्वय तथा सार्वभौमिकता की प्रतिमूर्ति थे और उनका सन्देश वर्तमान युग की आशाओं तथा आकांक्षाओं को पूरा करता है, अतः उनका मन्दिर भी सार्वभौमिक भावों से युक्त होगा।

श्रीरामकृष्ण के अन्य मन्दिरों तथा परम्परागत दक्षिण भारतीय स्थापत्य के सम्मिश्रण से बननेवाले इस मन्दिर में १००० भक्त एक साथ बैठकर प्रार्थना तथा ध्यान कर सकेंगे। ग्रेनाइट पत्थरों से बन रहे इस मन्दिर की अनुमानित लागत चार करोड़ रुपये आँकी गयी थी, परन्तु मन्दिर के प्रस्तावित आकार में वृद्धि और सामग्री तथा मजदूरी के दरों में वृद्धि के फलस्वरूप अब इसकी अनुमानित लागत बढ़कर साढ़े छह करोड़ हो गयी है।

इस तरह के एक विशाल तथा पुनीत कार्य को समाज के सभी स्तर के लोगों की शुभेच्छा तथा सहयोग से ही पूरा किया जा सकता है। उदारतापूर्वक दान के द्वारा इस परियोजना में सहभागी होने के लिए हम आप सभी को आमंत्रित करते हैं। आपका दान कृतज्ञता के साथ स्वीकृत तथा सूचित किया जायगा। रेखांकित चेक या ड्राफ्ट 'RAMAKRISHNA MATH, CHENNAI' के नाम से बनवाकर भेजें।

स्वामी गौतमानन्द
अध्यक्ष

For Details Contact : Sri Ramakrishna Math, Mylapore, Chennai-4
Phone 494 1213, 494 1959, Fax 493 4589

अनुक्रमणिका

मुद्रक . संयोग आफसेट प्रा.लि., बजरंगनगर, रायपुर, फोन . ५४६६०३

कम्पोजिंग : अल्फा लेजर स्पॉट, गीतानगर, रायपुर, फोन . २३५७७

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी त्रैमासिक

जुलाई–अगस्त–सितम्बर

◆ १९९७ ◆

वर्ष ३५ अंक ३

ब्रह्मानन्द का सुख

ब्रह्मेन्द्रादिमरुद्गणांस्तृणकणान्यत्र स्थितो मन्यते
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विभवास्त्रैलोक्यराज्यादयः।
भोगः कोऽपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते
भो साधो क्षणभङ्गुरे तदितरे भोगे रतिं मा कृथाः।

अन्वय — यत्र (जिसमें) स्थितः (स्थित होने से) [मनुष्य] ब्रह्म-इन्द्र-आदि-मरुत्-गणान् (ब्रह्मा से इन्द्र तक समस्त देवताओं को) तृणकणान् (घास के टुकड़े के समान तुच्छ) मन्यते (मानता है), यत्-स्वादात् (जिस भोगराशि का आस्वादन करने से) त्रैलोक्य-राज्य-आदयः (तीनों लोकों का आधिपत्य आदि) विभवाः (सम्पद भी) विरसाः (नीरस) भवन्ति (हो जाते हैं), सः एकः (वही एक) कः अपि (कोई) परमः (सर्वोच्च) नित्य-उदितः (नित्य प्रकाशित रहनेवाला) भोगः (ब्रह्मानन्द-रूपी भोग) एव (ही) जृम्भते (चिर विद्यमान है)। भो साधो (हे साधो!) तत्-इतरे (इसके अतिरिक्त) क्षण-भङ्गुरे (अनित्य) भोगे (सांसारिक भोग से) रतिं (प्रीति) मा कृथाः (मत करना)।

अर्थ — जिसमें स्थित होने पर मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, वायु आदि देवताओं को तृण के समान तुच्छ समझता है, जिस वस्तु की अनुभूति से तीनों लोकों के राज्य आदि वैभव भी नीरस प्रतीत होते हैं, वह नित्य प्रकाशित सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मानन्द का सुख ही चिर विद्यमान रहनेवाला है। एतएव हे साधो, अन्य क्षणस्थायी भोगों में आसक्ति मत रखना।

— भर्तृहरिकृत **वैराग्यशकतम्**, ४०

भारत की महिमा

'विदेह'

भारत पहले जग में सोने की चिड़िया कहलाता था,
इसकी गरिमा के सम्मुख जग का मस्तक झुक जाता था।

लेकिन दुर्दिन के चलते निर्धन अवनत यह देश हुआ,
जातिभेद औ छूतवाद का इसमें रोग-प्रवेश हुआ।

एक सहस्र वर्ष तक हमने कष्ट उठाये हैं अगणित,
रौंदे जाते रहे सभी के पाँवों तले, दलित पीड़ित।

अब फिर कालचक्र घूमा है, जाग रहा यह देश महान,
इसकी सेवा में जुट जाओ तजकर स्वार्थ और अभिमान।

महिमामय भारत गढ़ने का आया है यह स्वर्णिम योग,
आपस में यदि झगड़ेगे तो जग में पिछड़ेंगे हम लोग।

विविध जातियाँ बहु भाषाएँ भाँति भाँति के मत-आचार,
सबको लेकर गठित हुआ है यह अखण्ड भारत परिवार।

सब धर्मों का महासमन्वय साधित होगा इस धरती पर,
संस्कृति ही एकत्व करेगी सबको एक लड़ी में पोकर।

अग्नि-मंत्र

(स्वामी अखण्डानन्द को लिखित)

अल्मोड़ा
१५ जून, १८९७

कल्याणवरेषु,

तुम्हारे समाचार मुझे विस्तारपूर्वक मिलते जा रहे हैं, और मेरा आनन्द अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। इसी प्रकार के कार्य द्वारा जगत पर विजय प्राप्त की जा सकती है। सम्प्रदाय और मत के भेद क्या अर्थ रखते हैं? शाबाश ! मेरे लाखों आलिंगन तथा आशीर्वाद स्वीकार करो। कर्म, कर्म, कर्म — मुझे और किसी चीज़ की परवाह नहीं है। मृत्युपर्यन्त कर्म, कर्म, कर्म ! जो दुर्बल हैं, उन्हें अपने आपको महान कार्यकर्ता बनाना है, महान नेता बनाना है — धन की चिन्ता न करो, वह आसमान से बरसेगा। जिनका दान तुम स्वीकार करते हो, उन्हें अपने नाम से देने दो, इसमें कुछ हानि नहीं। किसका नाम और किसका महत्व? नाम के लिए कौन परवाह करता है? उसे अलग रख दो ! यदि भूखों को भोजन का ग्रास देने में नाम, सम्पत्ति और सब कुछ नष्ट हो जायँ, तब भी — **अहो भाग्यमहो भाग्यम्** — तब भी बड़ा भाग्य है — अत्यन्त भाग्यशाली हो तुम ! मस्तिष्क नहीं, हृदय और केवल हृदय ही विजय प्राप्त कर सकता है। पुस्तकें और विद्या, योग, ध्यान और ज्ञान — प्रेम की तुलना में ये सब धूलि के समान हैं। प्रेम से अलौकिक शक्ति मिलती है, प्रेम से भक्ति उत्पन्न होती है, प्रेम ही ज्ञान देता है और प्रेम ही मुक्ति की ओर ले जाता है। वस्तुतः यही उपासना है — मानव शरीर में स्थित ईश्वर की उपासना ! **नेदं यदिदमुपासते** — 'वह नहीं, जिसकी लोग उपासना करते हैं।' यह तो अभी आरम्भ ही है और जब तक हम इसी प्रकार पूरे भारतवर्ष में, नहीं, नहीं, सम्पूर्ण पृथ्वी पर न फैल जायँ, तब तक हमारे प्रभु का माहात्म्य ही क्या है !

लोगों को देखने दो कि हमारे प्रभु के चरणों के स्पर्श से मनुष्य को देवत्व प्राप्त होता है या नहीं ! जब अहंकार और स्वार्थ का चिह्न तक नहीं रह जाता, तो उसी को जीवन्मुक्ति कहते हैं।

शाबाश ! श्री प्रभु की जय हो ! क्रमशः भिन्न भिन्न स्थानों में जाओ। यदि हो सके तो कलकत्ते जाओ, लड़कों की एक अन्य टोली की सहायता से धन एकत्र करो; उनमें से दो-एक को एक स्थान में लगाओ, और फिर किसी और स्थान से

कार्य आरम्भ करो। इस प्रकार धीरे धीरे फैलते जाओ और उनका निरीक्षण करते रहो। कुछ समय के बाद तुम देखोगे कि काम स्थायी हो जायगा और धर्म तथा शिक्षा का प्रसार इसके साथ स्वयं हो जायगा। मैंने कलकत्ते में उन लोगों को विशेष रूप से समझा दिया है। ऐसा ही काम करते रहो तो मैं तुम्हें सिर-आँखों पर चढ़ाने के लिए तैयार हूँ। शाबाश ! तुम देखोगे कि धीरे धीरे हर जिला केन्द्र बन जायगा — और वह भी स्थायी केन्द्र। मैं शीघ्र ही नीचे (मैदानी अंचल में) जानेवाला हूँ। मैं योद्धा हूँ और रणक्षेत्र में ही मरूँगा। क्या मुझे यहाँ पर्दानशीन औरत की तरह बैठना शोभा देता है?

सप्रेम तुम्हारा,
विवेकानन्द

— २ —

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

अल्मोड़ा,
९ जुलाई १८९७

प्रिय बहन,

तुम्हारे पत्र की पंक्तियों में जो निराशा का भाव झलक रहा है, उसे पढ़कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। इसका कारण मैं समझता हूँ। तुम्हारी चेतावनी के लिए धन्यवाद, मैं उसका उद्देश्य भलीभाँति समझ गया हूँ। मैंने राजा अजित सिंह के साथ इंग्लैण्ड जाने का प्रबन्ध किया था, डॉक्टरों की मनाही के कारण, ऐसा न हो सका। मुझे यह सुनकर अत्यन्त हर्ष होगा कि हैरियट उनसे मिली। वे तुममें से किसी से भी मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे।

मुझे अमेरिका के कई अखबारों की बहुत-सी कटिंगें मिलीं, जिनमें अमेरिका की नारियों के सम्बन्ध में मेरे विचारों की भीषण निन्दा की गयी है। मुझे यह अनोखी खबर भी दी गयी है कि मैं अपनी जाति से निकाल दिया गया हूँ। मानों मेरी कोई जाति भी थी, जिससे मैं निकाला जाऊँ! संन्यासी की जाति कैसी?

जातिच्युत होना तो दूर रहा, मेरे पश्चिमी देशों में जाने से यहाँ समुद्र-यात्रा के विरुद्ध जो भाव थे, वे बहुत कुछ दब गये। यदि मुझे जातिच्युत होना पड़ता तो साथ-ही-साथ भारत के आधे नरेशों और प्रायः सारे शिक्षित समुदाय को भी वैसा ही होना पड़ता। यह तो हुआ नहीं, उल्टे मेरे पूर्वाश्रम की जाति के एक विशिष्ट

राजा ने मेरी अभ्यर्थना के लिए एक दावत की जिसमें उस जाति के अधिकांश बड़े-बड़े लोग उपस्थित थे। भारत में संन्यासी जिस किसी के साथ भोजन नहीं करते, क्योंकि देवताओं के लिए मनुष्यों के साथ खान-पान करना अमर्यादासूचक है। संन्यासी नारायण समझे जाते हैं, जबकि दूसरे केवल मनुष्य। प्रिय मेरी, अनेक राजाओं के वंशधरों ने इन पैरों को धोया, पोंछा और पूजा है, और देश के एक छोर से दूसरे छोर तक मेरा ऐसा सत्कार होता रहा, जो किसी को प्राप्त नहीं हुआ।

इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जब मैं रास्तों में निकलता था, तब शान्तिरक्षा के लिए पुलिस की जरूरत पड़ती थी! जातिच्युत करना इसे ही कहते होंगे! हाँ, इससे पादरियों के हाथ के तोते अवश्य उड़ गये। यहाँ वे है ही कौन? कुछ भी नहीं। हमें उनके अस्तित्व की खबर ही नहीं रहती। बात यह हुई कि अपनी एक वक्तृता में मैंने इंग्लिश चर्च वाले सज्जनों को छोड़ बाकी कुल पादरियों तथा उनकी उत्पत्ति के बारे में कुछ कहा था। प्रसंगवश मुझे अमेरिका की अत्यन्त धार्मिक स्त्रियों और उनकी बुरी अफ़वाह फैलाने की शक्ति का भी उल्लेख करना पड़ा था। मेरे अमेरिका के कार्य को बिगाड़ने के लिए, इसी को पादरी लोग सारी अमेरिकी स्त्री-जाति पर लांछन कहकर शोर मचा रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि अपने विरुद्ध जो कुछ भी कहा जाय, वह अमेरिकावासियों को पसन्द ही होगा। प्रिय मेरी, अगर मान भी लिया जाय कि मैंने अमेरिकनों के विरुद्ध सब तरह की कड़ी बातें कहीं हैं, तो भी क्या वे हमारी माताओं और बहनों के बारे में कही गयी घृणित बातों के लक्षांश को भी चुका सकेंगी?

ईसाई अमेरिकन नर-नारी हमें भारतीय बर्बर कहकर जो घृणा का भाव रखते हैं, क्या सात समुद्रों का जल भी उसे बहा देने में समर्थ होगा? और हमने उनका बिगाड़ा ही क्या है? अमेरिकावासी पहले अपनी समालोचना सुनकर धैर्य रखना सीखें, तब कहीं दूसरों की समालोचना करें। यह सर्वविदित मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो लोग दूसरों पर गाली-गलौज करने में बड़े तत्पर रहते हैं, वे उनके द्वारा तनिक भी समालोचना सहन नहीं कर सकते। फिर मैं कोई उनका कर्जदार थोड़े ही हूँ। तुम्हारे परिवार, श्रीमती बुल, लेगेट परिवार और दो-चार सहृदय जनों को छोड़कर कौन मुझ पर मेहरबान रहा है? अपने विचारों को व्यावहारिक रूप देने में किसने मेरा हाथ बँटाया? मुझे परिश्रम करते-करते प्रायः मौत का सामना करना पड़ा है। मुझे अपनी सारी शक्तियाँ अमेरिका में खर्च करनी पड़ी, केवल इसलिए

कि वहाँ वाले अधिक उदार और आध्यात्मिक होना सीखे। इंग्लैण्ड में मैंने केवल छः ही महीने काम किया। वहाँ किसी ने मेरी निन्दा नहीं की, सिवा एक के और वह भी एक अमेरिकन स्त्री की करतूत थी, जिसे जानकर मेरे अंग्रेज मित्रों को तसल्ली मिली। दोष लगाना तो दूर रहा, इंग्लिश चर्च के अनेक अच्छे-अच्छे पादरी मेरे पक्के दोस्त बने और बिना माँगे मुझे अपने कार्य के लिए बहुत सहायता मिली तथा भविष्य में और अधिक मिलने की पूरी आशा है। वहाँ एक समिति मेरे कार्य की देखभाल कर रही हैं और उसके लिए धन इकट्ठा कर रही हैं। वहाँ के चार प्रतिष्ठित व्यक्ति मेरे काम में सहायता करने के लिए मेरे साथ भारत आये हैं। दर्जनों और तैयार थे और फिर जब मैं वहाँ जाऊँगा, सैकड़ों तैयार मिलेंगे।

प्रिय मेरी, मेरे लिए तुम्हें भय की कोई बात नहीं। अमेरिका के लोग बड़े हैं, केवल यूरोप के होटलवालों और करोड़पतियों तथा अपनी दृष्टि में। संसार बहुत बड़ा है, और अमेरिकावालों के रुष्ट हो जाने पर भी मेरे लिए कोई न कोई जगह जरूर रहेगी। कुछ भी हो, मुझे अपने कार्य से बड़ी प्रसन्नता है। मैंने कभी कोई मनसूबा नहीं बाँधा। चीजें जैसे सामने आती गयीं, मैं भी उनको वैसे ही स्वीकार करता गया। केवल एक चिन्ता मेरे मस्तिष्क में दहक रही थी — वह यह कि भारतीय जनता को उन्नत करनेवाले यंत्र को चालू कर दूँ और इस काम में मैं किसी हद तक सफल हो सका हूँ। तुम्हारा हृदय यह देखकर आनन्द से प्रफुल्लित हो जाता कि किस तरह मेरे लड़के दुर्भिक्ष, रोग और दुःख-दर्द के बीच काम कर रहे हैं — हैजे से पीड़ित अछूतों की चटाई के पास बैठे उसकी सेवा कर रहे हैं, भूखे चाण्डाल को खिला रहे हैं — और प्रभु मेरी और उन सबकी सहायता कर रहे हैं। मनुष्य क्या है? वे प्रेमास्पद प्रभु ही सदा मेरे साथ है — जब मैं अमेरिका मैं था, तब भी मेरे साथ थे और जब इंग्लैण्ड में था, तब भी। जब मैं भारत में दर-दर घूमता था और जहाँ मुझे कोई भी नहीं जानता था, तब भी वे प्रभु ही मेरे साथ रहे। लोग क्या कहते हैं, इसकी मुझे क्या परवाह! वे तो अबोध बालक हैं, वे उससे अधिक क्या जानेंगे? क्या? मैं जो कि आत्मा का साक्षात्कार कर चुका हूँ और सारे सांसारिक प्रपंचों की असारता जान चुका हूँ, क्या बच्चों की तोतली बोलियों से अपने मार्ग से हट जाऊँ? — मुझे देखने से क्या ऐसा लगता है?

मुझे अपने बारे में बहुत कुछ कहना पड़ा, क्योंकि मुझे तुमको कैफ़ियत देनी थी। मैं जानता हूँ कि मेरा कार्य समाप्त हो चुका — अधिक से अधिक तीन या

चार वर्ष आयु के और बचे हैं। मुझे अपनी मुक्ति की इच्छा अब बिल्कुल भी नहीं है। और सांसारिक भोग तो मैंने कभी चाहे ही नहीं। मुझे सिर्फ़ अपने यन्त्र को मजबूत और कार्योपयोगी देखना है, और फिर निश्चित रूप से यह जानकर कि कम-से-कम भारत में मैंने मानवजाति के कल्याण का एक ऐसा यन्त्र स्थापित कर दिया है, जिसे कोई शक्ति नष्ट नहीं कर सकती, मैं सो जाऊँगा और आगे क्या होनेवाला है, इसकी परवाह नहीं करूँगा। मेरी अभिलाषा है कि मैं बारम्बार जन्म लूँ और हजारों दुःख भोगता रहूँ, ताकि मैं उस एकमात्र सम्पूर्ण आत्माओं के समष्टिरूप ईश्वर की पूजा कर सकूँ, जिसकी सचमुच सत्ता है और जिसका मुझे विश्वास है। सर्वोपरि सभी जातियों और वर्णों के पापी, तापी और निर्धन रूपी ईश्वर ही मेरा विशेष उपास्य है।

"जो तुम्हारे भीतर भी हैं और बाहर भी, जो सभी हाथों से काम करता है और सभी पैरों से चलता है, जिसका बाह्य शरीर तुम हो, उसी की उपासना करो और बाकी सभी मूर्तियाँ तोड़ डालो।

"जो ऊँचा है और नीचा है, परम साधु है और पापी भी, जो देवता है और कीट है, उस प्रत्यक्ष, ज्ञेय, सत्य, सर्वशक्तिमान ईश्वर की उपासना करो और बाकी सब मूर्तियाँ तोड़ डालो।

"जिसमें न पूर्वजन्म घटित होता है न पुनर्जन्म; न मृत्यु न आवागमन; जिसमें हम सदा एक होकर रहे हैं और रहेंगे, उसी ईश्वर की उपासना करो और बाकी सब मूर्तियाँ तोड़ डालो।

"हे मूर्खो! जीते-जागते ईश्वर और जगत् में व्याप्त उसके अनन्त प्रतिबिम्बों को छोड़कर तुम काल्पनिक छाया के पीछे दौड़ रहे हो! उसी की — उस प्रत्यक्ष ईश्वर की-- उपासना करो और बाकी सब मूर्तियाँ तोड़ डालो।"

मेरे पास समय कम है। मुझे जो कुछ कहना है — उससे किसी को पीड़ा हो या क्रोध, इसकी परवाह किये बिना, सब साफ-साफ कह देना होगा। इसलिए प्रिय मेरी, यदि मेरे मुँह से कुछ कड़ी बातें निकल पड़े तो मत घबराना, क्योंकि मेरे पीछे जो शक्ति है वह विवेकानन्द नहीं, स्वयं ईश्वर है और वही सबसे ठीक जानता है। यदि मैं संसार को खुश करने चला तो इससे संसार की हानि ही होगी। अधिकांश लोग जो कहते हैं वह गलत हैं, क्योंकि हम देखते हैं कि उनके नियन्त्रण से संसार की इतनी दुर्गति हो रही है। प्रत्येक नवीन विचार विरोध की सृष्टि अवश्य करेगा

— सभ्य समाज में वह शिष्ट उपहास के रूप में लिया जायेगा और बर्बर समाज में निकृष्ट चिल्लाहट और घृणित बदनामी के रूप में।

संसार के ये कीड़े भी एक दिन तनकर खड़े होंगे, ये बच्चे भी किसी दिन प्रकाश देख पायेंगे। अमेरिकावासी नये मद से मतवाले हैं। हमारे देश पर समृद्धि की सैकड़ों लहरें आयीं और गुजर गयीं। हमने वह सबक सीखा है, जिसे बच्चे अभी नहीं समझ सकते। यह सब झूठी दिखावट है। यह विकराल संसार माया है — इसे त्याग दो और सुखी हो जाओ। काम-कांचन की भावनाएँ त्याग दो। ये ही एकमात्र बन्धन हैं। विवाह, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध और धन — ये ही एकमात्र प्रत्यक्ष शैतान हैं। समस्त सांसारिक प्रेम देह से ही उपजते हैं। काम-कांचन को त्याग दो। इनके जाते ही आँखें खुल जायेंगी और आध्यात्मिक सत्य का साक्षात्कार हो जायगा; तभी आत्मा अपनी अनन्त शक्ति पुनः प्राप्त कर लेगी। मेरी तीव्र इच्छा थी कि हैरियेट से मिलने इंग्लैण्ड जाऊँ। मेरी सिर्फ एक इच्छा और है — मृत्यु के पहले तुम चारों बहनों से एक बार मिलना; मेरी यह इच्छा अवश्य पूरी होगी।

तुम्हारा चिर स्नेहाबद्ध,

विवेकानन्द
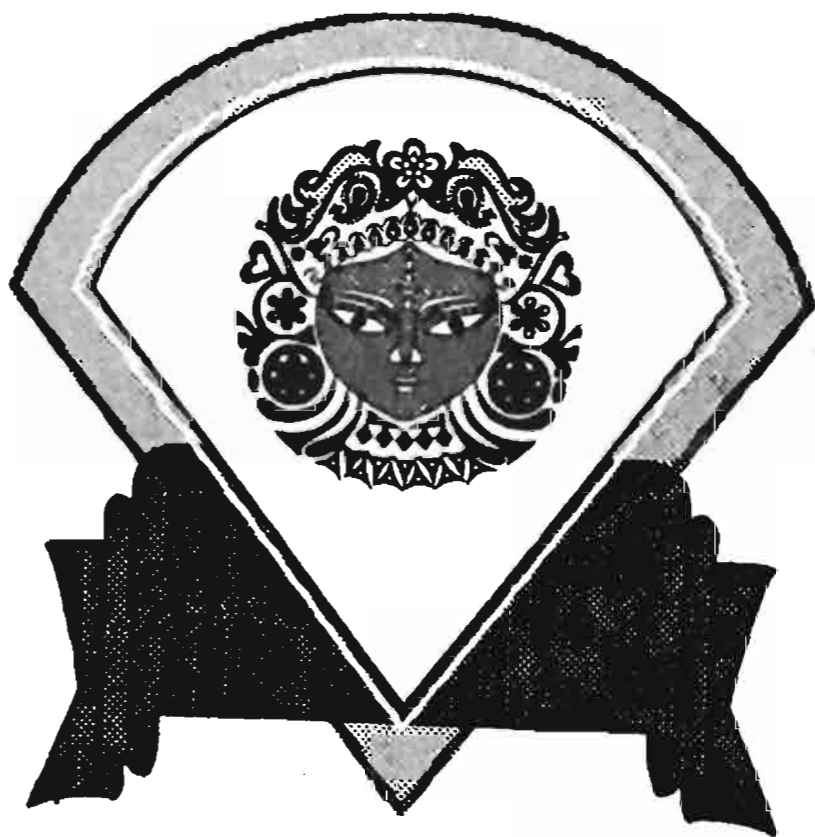
नेतृत्व का गुण

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विभिन्न विषयों पर विचारोत्तेजक तथा उद्‌बोधक लेख लिखे थे, जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख 'आकाशवाणी' रायपुर से साभार गृहीत है। — सं.)

आज मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों में जैसे गिरावट आयी है, वैसे ही उसके उस पक्ष में भी, जिसमें से नेतृत्व का गुण प्रकट होता है। 'नेतृत्व' का अर्थ होता है 'ले जाने का भाव' अर्थात् जो दूसरों को आगे ले जा सकता है, उसमें नेतृत्व के गुण हैं — ऐसा कहा जा सकता है। इसी को सामान्य बोल-चाल की भाषा में 'नेता' कहा जाता है।

आज से कुछ समय पहले तक या यों कह लीजिए जब तक हमारे देश को आजादी नहीं मिली थी तबतक 'नेता' शब्द अत्यन्त सम्मान का द्योतक था। सुभाषचन्द्र बोस जैसे शूर-वीर और आत्मत्यागियों से 'नेता' शब्द सम्मानित हुआ था और आज भी हम उन्हें 'नेताजी' के रूप में सम्बोधित करते हैं। पर आजादी के बाद से नेता शब्द क्रमशः मखौल और व्यंग्य का पर्याय बनता जा रहा है। कारण स्पष्ट है। नेतृत्व के वे गुण जब व्यक्ति में नहीं रह जाते, जिनके बल पर वह दूसरों की श्रद्धा को आकृष्ट करता है, तब डण्डे या पैसे के जोर पर ही वह दूसरों को अपने स्वार्थ के लिए बटोरने की चेष्टा करता है और 'नेता' कहलाता है।

आज अन्य सभी वस्तुओं की भाँति 'नेता' शब्द का भी अवमूल्यन हुआ है। पहले नेता कहने से एक ऐसे व्यक्ति का चित्र आँखों के सामने उभरता था, जो आत्मत्यागी हो, निःस्वार्थी हो, जो समाज या देश के कल्याण के लिए अपना सब कुछ खोने के लिए प्रस्तुत हो, जो अपने साथियों का दुःख-दर्द मिटाने के लिए, स्वयं तक को मिटा देने के लिए तैयार हो। ऐसा व्यक्ति आत्म-विज्ञापन नहीं करता था कि मैं नेता हूँ। उसके गुणों का कीर्ति-सौरभ बिना घोषणा के चारों ओर बिखर जाता था, जैसे फूल के खिलने पर उसकी सुगन्ध वायुमण्डल में छा जाती है। और तब लोगों को हाँककर लाने की जरूरत नहीं पड़ती थी, वे तो परागलोभी मधुकरों की भाँति स्वयं ही खिंचकर उनके पास चले आते थे और उनके जीवन में जलती

हुई बलिदान की आग को देख त्याग और देशभक्ति की प्रेरणा पाते थे। पर आज वह माहौल नहीं रहा। पहले 'नेता' पदवी प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अनुशासन के तप में अपने को तपाता था, पर आज सत्ता पाने की अन्धी दौड़ में भाग लेने हेतु खड़ा हो जाने को ही नेता मान लिया जाता है। जो येन-केन-प्रकारेण कोई काम करवा सके, वह नेता है। जो धन से किसी को खरीद सके, वह नेता है। जो अखबारों में अपने बयान छपवा सके, वह नेता है। जो डण्डे के बल पर दूसरों पर धौंस जमाता रहे, वह नेता है। जो दूसरों की टाँग खींचकर गिरा सके, वह नेता है। जो भाषणों में अच्छी-खासी गप्प हाँक सके और झूठे आश्वासनों के द्वारा जनता को प्रलोभित कर उनका वोट खींच सके, वह नेता है। जो स्वयं पैसे डकारकर एक निरपराधी को जेल भिजवा सके, वह नेता है। जो झूठ बोलता हुआ भी सत्य की दुहाई देता रहे, वह नेता है।

ऐसी परिस्थितियों में नेतृत्व के गुण भला कहाँ से प्रकट हो पायेंगे? जो सच्चा त्यागी है और अपने साथियों का कल्याण चाहता है, उसके पास वाग्जाल नहीं होता, चाटुकारिता नहीं होती, वह झूठे आश्वासन देना पसन्द नहीं करता। उसकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं होता। उसके पीछे आज के युग में भले ही भीड़ नहीं दिखायी देती, पर आज भी वह अपने नेतृत्व के गुणों से दूसरों में चिनगारी पैदा कर दे सकता है। आवशयकता है, तो मानवीय गुणों में मूलभूत आस्था की।

अंगरेजी में कहा गया है — "Some are born great, some achieve greatness, and on some greatness is thrushted" — अर्थात् कुछ लोग महान ही पैदा होते हैं, कुछ लोग महानता प्राप्त करते हैं और कुछ पर महानता थोपी जाती है। तो, यही बात नेतृत्व के लिए भी कहीं जा सकती है — कोई नेता ही पैदा होता है, कोई नेतापन अर्जित करता है और किसी पर नेतापन थोपा जाता है। आजकल इस तृतीय श्रेणी की भरमार है, जहाँ थोपे हुए नेतापन का मुखौटा लगाकर आचारहीन और भ्रष्ट लोग समाज में नेता का सम्मान पा रहे हैं। इसीलिए अच्छी-अच्छी योजनाओं के बावजूद देश उठ नहीं पा रहा है। देश का उत्थान नेतृत्व के सच्चे गुणों की अभिव्यक्ति से ही हो सकता है, केवल नारों के थोथे शोर-शराबे से नहीं।

□

श्रीरामकृष्ण - वचनामृत - प्रसंग

(सत्तावनवाँ प्रवचन)

स्वामी भूतेशानन्द

(स्वामी भूतेशानन्दजी रामकृष्ण मठ-मिशन बेलुड़ मठ के महाध्यक्ष हैं। उन्होंने पहले बेलुड़ मठ तथा बाद में रामकृष्ण योगोद्यान, काकुड़गाछी, कलकत्ता में 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत' पर धारावाहिक रूप से चर्चा की थी। उनके बँगला प्रवचनों को संग्रहित कर उद्‌बोधन कार्यालय द्वारा छह भागों में प्रकाशित किया गया है। इस प्रवचन-संग्रह की उपादेयता को देखते हुए हम भी इसे धारावाहिक रूप से यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। इसके हिन्दी रूपान्तरकार श्री राजेन्द्र तिवारी सम्प्रति श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर में अध्यापक हैं। — सं।

राखाल के पिता आये हुए हैं। ठाकुर बारम्बार उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। कह रहे हैं, "सूरण यदि अच्छा हुआ, तो उसके अंकुर भी अच्छे होते हैं।"

नित्य साकार ईश्वर के विषय में मास्टर महाशय और गिरीन्द्र आपस में चर्चा कर रहे हैं। नित्य साकार भाव भक्तों का एक विशेष आदर्श है। भक्तों के लिए वे नित्य साकार होकर आते हैं। उनके लिए यही अन्तिम बात है, इसके बाद ऐसा नहीं है कि उन्हें निराकार के राज्य में जाना पड़े। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं के भाव और आदर्श के अनुसार ही भगवान का आस्वादन करेगा।

राजा जनक और कर्म

दिन के तीसरे प्रहर भक्तगण पंचवटी के नीचे कीर्तन कर रहे हैं। पूरे दिन भर का वर्णन मास्टर महाशय ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है। ठाकुर कीर्तन कर रहे हैं और भक्तों के साथ नृत्य कर रहे हैं। कीर्तन के बाद वे भक्तों के साथ बरामदे में बैठे हुए हैं। गृही भक्तों को कह रहे हैं, "संसारी मनुष्य यदि ईश्वर का नाम जपे, तो समझो उसमें बड़ी मर्दानगी है। देखो राजा जनक बड़े ही मर्द थे। ...एक ओर पूर्ण ज्ञान था और दूसरी ओर वे संसार के कर्म कर रहे थे।" निर्लिप्त होकर संसार में कर्म करने के प्रसंग में राजा जनक का दृष्टान्त खूब चलता है। पुराणों में कथा है — राजा जनक इतने बड़े ज्ञानी थे कि शुकदेव को ब्रह्मज्ञान सीखने के लिए उन्हीं के पास भेजा गया। गीता में जनक की बात है। जनक ज्ञान और कर्म —

दोनों की तलवार चलाते हैं। प्रश्न उठता है कि वे साधक थे या सिद्ध? वे साधक हों, तो भी संसार में रहने के कारण उन्होंने कर्म का अवलम्बन किया। और सिद्ध तथा पूर्ण ब्रह्मज्ञ होने पर भी, वे राजकार्य चलाते हैं। उनके ज्ञान के साथ कर्म का विरोध नहीं है। कर्म करते हुए भी वे अनासक्त हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं, "मिथिला यदि जलकर भस्म हो जाय, तो भी इससे मेरा कुछ नहीं जलता।"

मिथिला मेरी है — ऐसा बोध उनमें नहीं था। अज्ञान के कारण ही 'मैं-मेरा' का बोध होता है। देह आदि के कर्म में वे लिप्त नहीं होते। तो क्या ज्ञानी जो चाहे वह कर सकता है? तत्त्वज्ञ व्यक्ति समझते हैं कि मैं कुछ नहीं करता। समस्त लोगों की हत्या करके भी 'वे' हत्या नहीं करते। व्यावहारिक दृष्टि से यह एक भयंकर मतवाद है। इस प्रसंग में ठाकुर कहते है, "पारसमणि के स्पर्श से लोहे की तलवार सोने की हो जाती है और तब उसके द्वारा फिर हिंसा का कार्य नहीं होता। इसी तरह ज्ञानियों के द्वारा भी दुष्कर्म नहीं हो सकते।" ज्ञान की प्रशंसा करने के लिए ही शास्त्रों ने ऐसा कहा है। ज्ञान का माहात्म्य ही ऐसा है कि ज्ञानी के द्वारा असत्कर्म सम्भव नहीं होता।

इसके बाद ठाकुर साधुसंग की बात उठाते हैं — साधुसंग की सदा ही आवश्यकता है। साधु के पास जाने पर मन में ईश्वर-चिन्तन का उदय होता है। साधु ईश्वर से मिला देते हैं।

इसके बाद भक्त लोग घर जाने को तैयार हुए।

ज्ञानी तथा भक्तों का कर्म

ब्राह्मभक्त मणिलाल मल्लिक ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। वे व्यवसायी आदमी हैं; काशी में उनका व्यवसाय आदि है, इसीलिए वहाँ गये थे। ठाकुर उनसे पूछते हैं — साधुदर्शन हुआ या नहीं। मणिलाल ने त्रैलंग स्वामी और भास्करानन्द को देखा है, वही बता रहे हैं। त्रैलंग स्वामी के प्रसंग में कहा — अब उनकी उच्च अवस्था नहीं रह गयी है। ठाकुर कहते हैं — यह सब विषयी लोगों की निन्दा है। विषयी लोग साधु की अलौकिक शक्तियों के आधार पर उनकी परख करते हैं। अर्थात् अलौकिक शक्ति होने पर उनसे विषयी लोगों को लाभ होगा। साधु की परख उनकी अलौकिक शक्तियों के विकास से नहीं, बल्कि उनके भगवत्प्रेम, वैराग्य आदि के आधार पर होनी चाहिए। ठाकुर ने जानना चाहा कि भास्करानन्द स्वामी से क्या बातें हुईं। यह सुनकर कि उन्होंने 'पाप-चिन्तन' त्याग करने का उपदेश

दिया है, ठाकुर बोले, "हाँ, यह एक तरह की बात है ऐहिक इच्छाएँ रखनेवालों के लिए।" जिनमें अभी भगवत्प्रेम का संचार नहीं हुआ है, उन्हें ऐहिक कहते हैं। प्राथमिक अवस्था में पाप-पुण्य के विचार की आवश्यकता है। ज्ञानी या भक्त ऐसा विचार करके नहीं चलता। भक्त जब भगद्भाव में विभोर रहते हैं, तब स्वभावतः ही उनके द्वारा कोई बुरा कर्म सम्भव नहीं होता। इसी तरह ज्ञानी के लिए भी किसी तरह का असत्कर्म करना सम्भव नहीं होता। जो लोग सत्कर्म करते हैं, वे ऐसा सोचकर नहीं करते, बल्कि जो कुछ कर्म करते हैं वही सत्कर्म हो जाता है। शुभ संस्कारों का उदय होने से अशुभ संस्कार दूर हो गये हैं, अतः शुभ संस्कारों की ही आवृत्ति होती रहती है। मन से अशुभ संस्कार चले जाने के कारण ही अशुभ कर्म सम्भव नहीं होता। परन्तु जब तक हमारे भीतर शुभ तथा अशुभ — दोनों तरह के संस्कार हैं, तब तक हमारे अन्तःकरण में शुभ-अशुभ का द्वन्द्व चलता ही रहता है। ऐसी अवस्था में हमें प्रयत्नपूर्वक अशुभ कर्मों से विरत रहना होगा। किन्तु जिनका चैतन्य हो चुका है, जिनमें भगवान के प्रति आन्तरिक प्रेम का उदय हुआ है, जिन्होंने भगवान को ही कर्ता के रूप में जान लिया है, उनका भाव अन्य प्रकार का है। ऐहिकों के लिए — साधारण मनुष्यों के लिए पाप-पुण्य का विचार करके चलने की आवश्यकता है। परन्तु जिनका मन आन्तरिक रूप से ईश्वर में लग गया है, वे पाप-पुण्य से परे हैं।

इस उच्च अवस्था को जान लेना हमारे लिए बहुत जरूरी है। अन्यथा हम जिस सीढ़ी पर हैं, उसी पर रह जायेंगे। स्मरण रखना होगा कि हमें और भी आगे बढ़ना है। साधना का क्या कोई अन्त है? साधना करते-करते आँखों से दो बूँद आँसू टपक गये या थोड़ा आनन्द हुआ कि सोचने लगे — अहा, मेरी कितनी उच्च अवस्था हो गयी है। अभी तो चलना आरम्भ हुआ है और आगे सारा रास्ता पड़ा है — यह बात हमें याद रखनी होगी। साधनपथ पर फूल नहीं बिछे हैं। थोड़े-से आनन्द का आभास मात्र पा लेने काम नहीं चलेगा। नशे में मतवाला हो जाना होगा। जब तक ऐसा न हो, तब तक समझना होगा कि अभी सारा रास्ता बाकी है। कई लोग कहते है, "भगवान के नाम पर जैसा पहले आनन्द आता था, वैसा अब नहीं आता।" असल बात यह है कि भगवान के लिए असह्य पीड़ा का अनुभव हो रहा है या नहीं — यही देखना होगा। इस रास्ते पर चलने के लिए तैयारी चाहिए। पाप को छोड़कर पुण्य का आश्रय लेना होगा। इस प्रकार पाप के संस्कार नष्ट हो

जाने पर, पुण्य को भी विसर्जित कर देना होगा। ज्ञान और अज्ञान — दोनों से परे जाना होगा। जब अहंबोध नहीं रह जायगा, तभी यह भाव आयेगा। ईश्वर को जान लेने पर बोध होगा कि वे ही सब कुछ कर रहे हैं। इसके पहले यदि हम कहें कि 'वे ही' सब कुछ कर रहे हैं, तो यह अपने मन को ही धोखा देना हुआ। बुरे कर्म करके अपने दोषों को ढँकने के लिए हम कहते हैं — क्या करूँ, उन्होंने ही तो करवाया।

आन्तरिकता और नाम

ठाकुर पूछते हैं कि भास्करानन्द के साथ और कोई बात हुई या नहीं? मणिलाल बोले कि भक्ति कैसे होती है, यह पूछने पर उन्होंने कहा, "नाम जपो, राम-राम कहो।" ठाकुर बोले यह बड़ी अच्छी बात है। अर्थात भगवान का नाम जप करते करते भक्ति होती है। भगवान के नाम से मन क्रमशः शुद्ध होगा और तब हृदय में भगवत्प्रेम का उदय होगा। वैधी-भक्ति करते करते राग-भक्ति का उदय होगा। भक्ति के द्वारा ही भक्ति उत्पन्न होती है। वैधी-भक्ति श्रद्धापूर्वक करनी होगी, केवल दिखावे के लिए नहीं। यह भगवत्प्रेम तत्काल नहीं होता, साधना-पथ पर चलते चलते क्रमशः होता है। हम लोग सोचते हैं कि दो-चार बार भगवान का नाम लेंगे और आनन्दविभोर हो जायेंगे, पर ऐसा नहीं होता। या फिर चुपचाप बैठे रहेंगे और भगवान की कृपा से भक्ति से परिपूर्ण हो जायेंगे, ऐसा भी नहीं होता। क्या करेंगे और क्या नहीं करेंगे — यह तो वे ही जानें। हमें क्या करना है, यह तो हमें ही सोचना पड़ेगा। धार्मिकता का स्वांग अर्थात दिखावे का धर्म — ठाकुर कहते हैं कि वह सब धर्म नहीं है। जब तक भगवान को पाने की आकांक्षा नहीं जागती, तब तक धर्मजीवन आरम्भ ही नहीं होता। धर्म कहने का अर्थ हम सोचते हैं — जप, पूजा-पाठ आदि है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह सब गुड़ियों के खेल जैसा है। छोटी बालिकाएँ गुड़ियों से खेलती हैं, किन्तु जब विवाह आदि हो जाता है, उसके बाद वे उन गुड़ियों को लेकर नहीं खेलतीं। ठीक इसी तरह साधन-भजन जप-तप, यह सब गुड़ियों का खेल मात्र है। जब भगवान के लिए आन्तरिक आकर्षण होगा, तभी धर्मजीवन शुरू होगा।

कलकत्ते से कई पुराने ब्राह्मभक्त आए हैं। उनमें से एक हैं ठाकुरदास सेन। ठाकुर छोटे तख्त पर बैठे आनन्दपूर्वक उनके साथ बातें कर रहे हैं। प्रेमतत्त्व के सम्बन्ध में बातें हो रही हैं। वे बोले, "तुम लोग प्रेम प्रेम कहते हो; परन्तु प्रेम क्या

ऐसी सामान्य वस्तु है? प्रेम चैतन्यदेव को हुआ था।" यह महाभाव या प्रेम साधारण मनुष्य को नहीं होता। साधारण लोगों की भक्ति के बाद भाव तक हो सकता है, महाभाव नहीं। प्रेम के दो लक्षण हैं — पहला, संसार भूल जाता है अर्थात मन ईश्वरप्रेम में इतना डूब जाता है कि फिर वह बाह्य जगत में जाता ही नहीं। दूसरा लक्षण यह है कि देहात्म बोध एकदम चला जाता है। देह को 'मैं' समझना देहात्मबुद्धि है — यह बोध पूर्णतः चला जाता है। साधारण मनुष्य प्रयत्न करके थोड़ा-बहुत भगवान से प्रेम कर सकता है, किन्तु देह का विस्मृत हो जाना साधारण बात नहीं है। इसीलिए कहते हैं कि ईश्वर-दर्शन हुए बिना प्रेम नहीं होता। उसके पहले साधन-भजन करते हुए अधिक-से-अधिक भाव-भक्ति तक हो सकता है। ईश्वर-दर्शन के कुछ लक्षण हैं। उसके पूर्व सात्विक लक्षण प्रकट हो उठते हैं। विवेक-वैराग्य दीख पड़ते हैं, जीवों पर दया, साधु-सेवा, सत्संग, ईश्वर का नाम-गुण-कीर्तन, सत्यवचन आदि सब सात्विक लक्षण प्रकट होते हैं। ये सब अनुराग के ऐश्वर्य हैं। अनुराग का अर्थ केवल आँखों से आँसू बहाना नहीं है। इस ऐश्वर्य के लक्षण प्रकट होने पर समझ में आ जाता है कि अब ईश्वर-दर्शन में अधिक विलम्ब नहीं है।

एक भक्त पूछते हैं — क्या विचार के द्वारा इन्द्रियनिग्रह करना होगा? ठाकुर ने विचारपथ को अस्वीकार नहीं किया, परन्तु उसे अधिक महत्व भी नहीं दिया। कहते हैं, "भक्तिपथ से भी अन्तरिन्द्रिय-निग्रह अपने आप हो जाता है और सहज ही हो जाता है।" भगवान के प्रति प्रेम होने पर विषय-सुख अच्छे नहीं लगते। मिश्री का शरबत मिल जाय, तो गुड़ का रस अच्छा नहीं लगता। तब विषय अपने आप ही तुच्छ प्रतीत होते हैं। ठाकुर उपमा देते हुए कहते हैं, "जिस दिन लड़का मर जाता है, उस दिन शोक की अवस्था में क्या स्त्री-पुरुष का मन देहसुख की ओर जा सकता है? वह विषाद इतना तीव्र होता है कि मन दूसरी ओर नहीं जाता। एक भक्त कहते हैं, "उनका नाम लेना अच्छा कहाँ लगता है?" बड़ी स्वाभाविक बात है — उनको हम प्यार ही कहाँ कर पाते हैं? उनसे प्रेम करने पर और सब आकर्षण दूर हो जाते हैं — यह बात तो खूब अच्छी तरह से समझ में आ गई। किन्तु प्रेम होता कहाँ है? इसके उत्तर में ठाकुर कहते हैं, "व्याकुल होकर उनसे प्रार्थना करो, जिससे उनके नाम में रुचि हो। वे ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे।" ये बातें इतनी सहज है कि हमें इस पर सहज ही विश्वास नहीं होता! क्या सचमुच प्रार्थना करने से उनके नाम में रुचि होगी? ठाकुर कहते हैं कि यदि उनका नाम

लेते लेते अनुराग बढ़े और आनन्द का अनुभव हो, तो फिर उनकी कृपा अवश्य होगी। भगवान के असंख्य नाम हैं, जो भी नाम अच्छा लगे, उसी का जप किये जाना होगा। जीव को विकाररोग है — नाम में अरुचि। यदि थोड़ी सी भी इच्छा रही, तो बचने की बड़ी सम्भावना है। उनकी कृपा होगी।

वे हैं भावग्राही जनार्दन। वे मन को देखते हैं, बस आन्तरिकता के साथ उनका नाम लेते जाना होगा। कर्ताभजा सम्प्रदाय के लोग मन्त्र देते समय कहते हैं — "मन तोर" अर्थात मन लगाकर जप करने से उसका फल मिलेगा। 'जिसका मन ठीक होगा, उसका कर्म भी ठीक होगा' — भगवान के नाम-माहात्म्य में विश्वास रखकर साधना करनी होगी। मैं उनका नाम लेता हूँ, मैं क्या नहीं कर सकता — ऐसे विश्वास की आवश्यकता है।

जब तक अहंकार बना हुआ है, तब तक ईश्वर का दर्शन नहीं होता। यदि हमें बोध हो रहा है कि 'कर्ता मैं हूँ', तो फिर उनको स्थान कहाँ देंगे? नीचे झुकने पर ही व्यक्ति ऊँचा होता है, विनीत होना पड़ता है। विनीत हुए बिना मन में भगवद्भाव नहीं आता। साधुसंग की बड़ी आवश्यकता है। "थोड़ा कष्ट उठाकर सत्संग करना पड़ता है।" 'थोड़ा कष्ट उठाकर' इसलिए कि प्रारम्भ में शायद मन न लगे, इसलिएजिद करके चलना पड़ता है। घर में परिवेश प्रतिकूल है, अतः जिद करके साधुसंग करना पड़ता है।

इसके बाद कहते हैं — बड़े आदमी के घर सभी कमरों में उजाला रहता है, गरीब लोग इतने प्रकाश की व्यवस्था नहीं कर पाते। वे अन्धकार में रहते हैं। इस देहमन्दिर में ज्ञान का दीपक जला रखना होगा। उन पर सबका अधिकार है। जो सर्वशक्ति के आधार हैं, शरणागत होने पर उनके साथ योग हो सकता है। हर व्यक्ति के भीतर वे ही परमात्मा विराजमान है, उनसे विच्छिन्न रहने के कारण ही लगता है कि हम तुच्छ और अल्पशक्ति हैं। उनसे योग होते ही हम चैतन्य स्वरूप हो जायेंगे। जो चैतन्य हो गये हैं, उन्हें ईश्वरी चर्चा छोड़कर अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता। चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र के जल को छोड़ अन्य कोई जल नहीं पीता। (क्रमशः)

□

मानस रोग (२७/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(हमारे आश्रम द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित विवेकानन्द जयन्ती के अवसरों पर पण्डितजी ने 'रामचरितमानस' के अन्तर्गत मानस-रोग प्रकरण पर कुल ४६ प्रवचन दिये थे। प्रस्तुत अनुलेखन उनमें से सत्ताइसवें प्रवचन का पूर्वार्ध है। इसे लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है, जो सम्प्रति श्रीराम संगीत विद्यालय, रायपुर में अध्यापक हैं। — सं.)

'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में मन के रोगों का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी प्रारम्भ में ही कहते हैं —

सुनहु तात अब मानस रोगा ।
जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ।।७/१२१/२८

— उन मानसरोगों का वर्णन सुनिए, जिनसे सब लोग दुःख पाते हैं। लेकिन जब मानसरोग-सम्बन्धी उन सारी पंक्तियों को हम ध्यान से पढ़ेंगे, तो दिखाई देगा कि किसी किसी रोग में दुःख के साथ गोस्वामीजी एक अन्य विशेषण भी जोड़ देते हैं। आज हम जिस पंक्ति की चर्चा करने जा रहे हैं, उसमें भी दुःख के साथ एक विशेषण जुड़ा हुआ है। गोस्वामीजी कहते हैं —

अहंकार अति दुखद डमरुआ ।
दंभ कपट मद मान नेहरुआ ।।७/१२१/३५

यहाँ उनका अभिप्राय यह है कि वैसे तो मन के सभी रोग दुःखद होते हैं, परन्तु यह जो अहंकार का रोग है, वह 'अति दुःखद' — अत्यन्त दुःख देनेवाला है। यह अहंकार का डमरुवा अत्यन्त दुःख देनेवाला रोग है।

शरीर के रोगों के साथ मन के रोगों की तुलना करते हुए गोस्वामीजी अहंकार की तुलना शरीर के डमरुवा रोग से करते हैं। डमरुवा पेट का एक रोग है, जिसमें रोगी का पेट बहुत बढ़ जाता है और रोगी के लिए कुछ भी पचा पाना सम्भव नहीं होता और रोगी धीरे-धीरे शक्तिहीन होकर कालग्रस्त हो जाता है।

रामचरितमानस में अहंकार को एक अत्यन्त जटिल रोग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कुछ रोग तो ऐसे हैं जो उत्पन्न होते हैं और समाप्त हो जाते हैं। ऐसे रोगों को सहन कर लेना तथा उनकी चिकित्सा करना अपेक्षाकृत सरल होता है। रोग यदि कुपथ्य या किसी विशेष परिस्थिति से उत्पन्न हुआ हो, तब तो उसे औषधि

तथा पथ्य के द्वारा दूर किया जा सकता है, किन्तु जो रोग जन्म से ही व्यक्ति के साथ लगा हो और जीवन भर जिसके लगे रहने की सम्भावना हो, तब तो व्यक्ति यह सुनकर टूट जायगा कि जीवन भर चिकित्सा में लगे रहना होगा और सर्वदा इस अति दुःखद डमरुवा रोग को भोगना पड़ेगा और कहना न होगा कि अन्त में मृत्यु का कारण भी वही बनेगा।

इसीलिए रामायण में एक अनोखी बात कही गई है। अभिमान की परिभाषा क्या है? जैसे अग्नि का स्वभाव है दाहकता, इसी तरह प्रकृति में जितने भी पदार्थ हैं, उन सबका अलग-अलग धर्म है। अभिमान के लिए कहा गया —

हरष विषाद ग्यान अग्याना ।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना ।।१/११५/७

— अज्ञान और अभिमान ही जीव का लक्षण अथवा धर्म है। इसका अभिप्राय क्या है? व्यक्ति के मन में जितने भी प्रकार के रोग हैं, उनकी एक सीमा है, एक अवधि है। किसी कारण से वे उत्पन्न होते हैं और कुछ समय बाद दूर हो जाते हैं। उदाहरण के लिए काम को ही लें — काम व्यक्ति के जीवन में उत्पन्न होता है, पर कुछ समय बाद वह शान्त हो जाता है, कुछ समय बाद व्यक्ति उससे विरक्त भी हो जाता है। क्रोध भी चाहे जितना प्रचण्ड हो, कुछ काल बाद शान्त हो जाता है। लोभ के साथ अवश्य ही एक जटिल समस्या है, इसीलिए गोस्वामीजी ने उसके साथ भी एक शब्द जोड़ दिया है — **काम बात कफ लोभ अपारा** — लोभ के साथ अपार शब्द का प्रयोग किया गया। इसका अभिप्राय यह है कि काम की तो एक सीमा है, तृप्ति है, विराम है; क्रोध की भी एक सीमा है, परन्तु व्यक्ति के जीवन में लोभ की कोई सीमा नहीं है। इसलिए लोभ के लिए कहा गया -- 'अपारा' अर्थात जो असीम हो। लेकिन इतना होते हुए भी कोई कितना भी बड़ा लोभी क्यों न हो, जब वह विश्राम करने जाता है, सोना चाहता है, तब तो वह लोभ की वृत्ति से अलग रहता है। लेकिन जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, जन्म के पूर्व, जन्म के बाद — जीवन की प्रत्येक घटना के साथ जुड़ी हुई जो वस्तु है, वह क्या है? यह अभिमान ही ऐसा विलक्षण है, जिसका परिचय रामायण में 'जीव का धर्म' कहकर दिया गया है। व्यक्ति के जीवन में ऐसा कोई क्षण नहीं है, जिसमें 'मैं' अविद्यमान हो। इसकी सबसे बड़ी कसौटी क्या है? — जब हम सो जाते हैं, तो साथ ही शरीर सो जाता है, सारी इन्द्रियाँ भी सो जाती हैं, लेकिन उस समय भी कोई एक ऐसा है, जो

जागता रहता है। कौन? वही, जो कहता है कि अच्छी नींद लगी थी, खूब मजे से सोया। सोकर उठने के बाद हमारे मुख से यह जो शब्द निकलता है कि खूब चैन से सोया। इसे कौन अनुभव करता है, कौन बोलता है? मन, बुद्धि और चित्त भले ही न दिखाई देते हों, पर यह 'मैं' जो नींद के सुख को अनुभव कर रहा था, वह गहरी नींद में भी 'अहं' के रूप में जाग रहा था। इस तरह से यह अहं व्यक्ति के जीवन में जन्म से लेकर अन्तिम क्षण तक प्रत्येक क्रिया में शाश्वत रूप से जुड़ा हुआ है। इतना ही नहीं, इसकी विलक्षणता यह है कि यह पाप के साथ तो जुड़ा ही हुआ है, व्यक्ति के सत्कर्म और पुण्य के साथ भी जुड़ा हुआ है। यह अंधर्म के साथ तो जुड़ा ही हुआ है, किन्तु धर्म के साथ भी जुड़ा है। अज्ञान के साथ तो जुड़ा ही है, पर ज्ञान के साथ भी यह 'अहं' जुड़ा हुआ है। इस प्रकार, जो अहंकार जीवन में एक क्षण के लिए भी व्यक्ति का साथ नहीं छोड़ता, जो प्रत्येक वृत्ति के साथ व्यक्ति के अन्तःकरण में विद्यमान है, उस 'अहं' से मुक्त हो पाना कितना कठिन होगा, इस पर जब हम विचार करेंगे, विशेष रूप से जब एक साधक अपने अन्तर्जीवन को देखता है, तो उसे ऐसा प्रतीत होता है कि सचमुच ही इस अहं पर विजय पाना सर्वाधिक कठिन है। इसे रामायण में एक दूसरी शैली में भी प्रगट किया गया है।

एक ओर तो 'विनयपत्रिका' में यह कहा गया कि रावण का भाई कुम्भकरण अहंकार का प्रतीक है। गोस्वामीजी कहते हैं कि लंका राक्षसों की नगरी है। अब उन दुर्गुण-दुर्विचारों को चाहे आप रोग कह लीजिए या राक्षस, वह तो एक काव्य है। दोनों का अर्थ एक ही है। रोग भी व्यक्ति को नष्ट कर देते हैं और राक्षस भी। इन विकारों को गोस्वामीजी अलग-अलग राक्षसों के रूप में देखते हैं तथा उनकी व्याख्या करते हुए कहते हैं — **मोह दशमौलि**। हमारे अन्तःकरण में जो मोह है, वही रावण है। **तद्भ्रात अहंकार** — रावण का छोटा भाई कुम्भकर्ण ही अहंकार है और — **पाकारिजित काम विश्रामहारी**। रावण का पुत्र मेघनाथ ही काम है। अब एक ओर यह कहा गया कि कुम्भकर्ण, जो राक्षस है, दैत्य हैं, वह अहंकार का प्रतीक है और दूसरी ओर जहाँ विराट् भगवान का परिचय दिया गया, वहाँ पर एक विचित्र वाक्य कहा गया। विराट में भी मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार है। वहाँ अहंकार किसे बताया गया —

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ।। ६/१५ (क)

शंकरजी मूर्तिमान अहंकार हैं। अब अहंकार के साथ यह कौन-सी समस्या जुड़ गई? कुम्भकर्ण भी अहंकार हैं और भगवान शंकर भी। एक ओर जहाँ रामायण का एक अत्यन्त निन्दनीय और कठोर पात्र कुम्भकर्ण अहंकार का प्रतीक है, वहीं दूसरी ओर जिनकी पग-पग पर प्रशंसा और पूजा की जाती है, वे शंकरजी भी अहंकार के प्रतीक हैं। यही 'अहं' की सर्वव्यापकता है। यह 'अहं' शब्द कैसे बना, इस पर संस्कृत साहित्य में एक प्रसिद्ध उक्ति प्रचलित है, जिसमें कहा गया कि यह वर्णमाला का पहला अक्षर है। 'अ' से ही वर्णमाला प्रारम्भ होती है और उसका अंतिम अक्षर 'ह' है। इसका तात्पर्य हुआ कि 'अ' से लेकर 'ह' तक सारे स्वर तथा व्यंजन जिसमें समाये हुए हों, सारी सृष्टि जिसमें समाई हुई हो, वही यह 'अहं' है।

अब एक ओर हम अहंकार के रूप में कुम्भकरण को और दूसरी ओर भगवान शंकर को देखें। इसका अभिप्राय क्या है? एक बात आपने पढ़ी या सुनी होगी कि शंकरजी एक ऐसे देवता हैं, जिनके भक्त केवल देवता ही नहीं, दैत्य भी हैं। राक्षस भी उनकी पूजा करते हैं। इसका अभिप्राय क्या है? यह रामायण का एक सांकेतिक सूत्र है। रावण भगवान शंकर की पूजा करता है और जब भगवान राम लंका पर आक्रमण करने के लिए समुद्र के किनारे पहुँचे, तो उन्होंने अपना संकल्प प्रगट किया —

करिहउँ इहाँ संभु थापना ।
मोरे हृदयँ परम कलपना ।।६/१/४

इस तरह एक ओर रावण भी शिव का पुजारी है और दूसरी ओर भगवान राम भी। भगवान शंकर के लिए रामायण में दो अलग अलग शब्द कहे गये हैं, जो बहिरंग दृष्टि से परस्पर एक दूसरे से भिन्न लगते हैं। एक प्रसंग में तो कहा गया कि वे मूर्तिमान विश्वास हैं —

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ । १/२

एक ओर विश्वास, तो दूसरी ओर अहंकार। अब हम उन्हें विश्वास के रूप में देखें कि अहंकार के रूप में? पुराणों में जो यह कहा गया कि सारे राक्षस और दैत्य भगवान शंकर की पूजा करते हैं, इसका अभिप्राय क्या है? यह कि अहंकार

के रूप में भगवान शंकर का जो स्वरूप है, उसका वास्तविक अर्थ तो दैत्य और राक्षस ग्रहण कर नहीं पाते। वे तो भगवान शंकर के स्वरूप की व्याख्या अपनी दृष्टि से ही करते हैं, अपनी वृत्ति के समर्थन में उसका अर्थ निकाल लेते हैं। भगवान शंकर में जब उन्हें नग्नता दिखाई देती है, तो इसका अर्थ वे यह लेते हैं कि जो मर्यादाओं को नहीं मानता, जो मर्यादाओं को तोड़ सकता है, वही शिव है।

शिव के स्वरूप की इस तरह की व्याख्या करके उन स्वेच्छाचारी असुरों को लगता है कि वाह, हमारे योग्य देवता तो शिव ही हैं। हम तो उसी देवता की पूजा करेंगे, जो सारे मर्यादाओं को तोड़कर हमें यथेच्छाचार-पूर्वक भोगविलास करने की प्रेरणा दे। भगवान शंकर के गले में जब उन्हें मुण्डमाल और हाथ में कपाल दिखाई देता है, तो इससे उन्हें हिंसा और नरसंहार की प्रेरणा मिलती हैं। भगवान शंकर के शरीर पर चिताभस्म देखकर उन्हें अपवित्र जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है। शिव के साथ भूत, प्रेत तथा पिशाचों को देखकर असुरों को बड़ी प्रसन्नता होती है, क्योंकि असुर स्वयं भी सदा असद्-मण्डली से घिरा रहता है और इसमें उसे अपने ईष्ट का अनुसरण दिखाई देता है। इस तरह दैत्य और राक्षस भगवान शिव के स्वरूप की मनमानी व्याख्या करके उनकी पूजा करते हैं। किन्तु शिव के स्वरूप के विषय में उनकी यह धारणा नितान्त भ्रामक है, क्योंकि उन्हीं शिव को जब एक भक्त विश्वास-स्वरूप देखता है, तब उन्हीं वस्तुओं को देखकर उसे उस अर्थ की अनुभूति नहीं होती, जिस अर्थ की अनुभूति दैत्यों को होती है। इस बात को ध्यान में रखना है।

इसी कठिनाई को लेकर पुराणों में और समाज में भी विष्णु तथा शिव में विरोध प्रारम्भ हुआ। कई लोगों ने मान लिया कि जो विष्णु के भक्त होते हैं वे भले मनुष्य होते हैं और शिव के भक्त तमोगुणी। इस तरह इस देश में बड़े लम्बे समय तक वैष्णवों और शैवों में बड़ा विरोध रहा। आप लोगों में से जिन्होंने इतिहास पढ़ा होगा, वे यह बात जानते होंगे। किन्तु गोस्वामी तुलसीदासजी ने बताया कि वस्तुतः शिव और विष्णु के बीच रंचमात्र भी विरोध नहीं है। देखने में तो वे परस्पर एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न लगते हैं। शिव नग्न हैं, तो विष्णु पीताम्बर पहने, आभूषण धारण किये हुए पूरे राजसी वेश में है। शिव चिता की राख लगाये हुए हैं, तो विष्णु चन्दन का लेप किये हुए हैं। शिव संहार के देवता है, तो विष्णु पालनकर्ता हैं। ऐसी स्थिति में जो व्यक्ति बहिरंग दृष्टि से देखता है, उसे यह देखकर

भ्रम होना स्वाभाविक ही है कि शिव तमोगुणी, उच्छृंखल तथा संहार के देवता हैं। कहीं आप भी ऐसा ही न समझ लीजिएगा। यह केवल भ्रम है, जो न केवल साधारण लोगों को, बल्कि बड़े-बड़े विद्वानों को भी होता है। इसीलिए 'रामचरितमानस' में कथा का प्रारम्भ राम-चरित्र से न करके शंकर-चरित्र से किया गया है। भगवान शंकर की कथा में जो मूल तत्व है, वह यह है कि भगवान शंकर के दो विवाह होते हैं। पहला विवाह दक्ष की पुत्री सती से होता है। बाद में वही सती अपना शरीर त्यागकर पुनः हिमाचल की पुत्री पार्वती के रूप में जन्म लेती हैं, तब उनसे भगवान शंकर का दूसरा विवाह होता है। इस कथा में जो तत्व है, उस पर जब आप गहराई से विचार करेंगे, तो पुराणों में यह जो शिव और विष्णु में परस्पर विरोध दिखाई देता है, उसका रहस्य समझ में आ जायगा। इस कथा में संकेत यह है कि दक्ष ब्रह्मा के पुत्र हैं और सृष्टिकर्ता ब्रह्मा बुद्धि के देवता हैं। फिर भगवान विष्णु चित्त के, भगवान शंकर अहंकार के और चन्द्रमा मन के देवता हैं।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ।।६/१५/क

यही विराट् भगवान का रूप है। इसे अगर दूसरी दृष्टि से कहें, चित्त और अहंकार को बहिरंग दृष्टि से देखें, तो इन दोनों में परस्पर भिन्नता दिखाई देगी। 'अहं' पूर्ण सक्रियता का प्रतीक है, दुर्गुणों का प्रतीक लगता है और चित्त प्रशान्त, समस्त वृत्तियों का निरोध, समाधि की स्थिति जैसा प्रतीत होता है। इसलिए चित्त और अहंकार में, विष्णु और शिव में जो भिन्नता दिखाई देती है, इसमें एक सामंजस्य है और इस सामंजस्य के तत्त्व को जो समझ लेता है, उसके मन से यह भिन्नता का भ्रम अथवा शिव के स्वरूप की भ्रान्ति दूर हो जाती है।

भगवान शंकर के विवाह की कथा इस प्रकार है कि दक्ष की अनेक पुत्रियाँ हैं। उनमें से एक सती हैं। दक्ष ने अपने पिता ब्रह्मा से पूछा कि मैं अपनी पुत्री सती का विवाह किससे करूँ? ब्रह्मा ने कहा कि तुम अपनी इस कन्या का विवाह शिव से कर दो। इस प्रकार भगवान शिव के साथ सती का विवाह हुआ। श्रीमद् भागवत तथा अन्य पुराणों में कहा गया है कि दक्ष ब्रह्मा के पुत्र हैं और यह संकेत भी मिलता है कि दक्ष बड़े चतुर हैं। दक्ष का एक अर्थ होता है चतुर। अब एक ओर हैं बुद्धि के देवता ब्रह्मा, उनके पुत्र दक्ष-चतुर तथा उनकी पुत्री सती — परम बुद्धिमती। और दूसरी ओर हैं भगवान शंकर — मूर्तिमान विश्वास। बुद्धि के देवता

ब्रह्मा ने कहा, सती का विवाह शंकर से करो, इसका अभिप्राय क्या है? बुद्धि और विश्वास परस्पर एक दूसरे के विरोधी हैं कि पूरक? साधारणतया तो यही दिखाई देता है कि बुद्धिमता और विश्वास एक दूसरे के विरोधी हैं। जो बड़े बुद्धिमान होते हैं, वे किसी पर विश्वास नहीं करते, वे लोग विश्वास से दूर भागते हैं और यह कहकर विश्वास की निन्दा करते हैं कि अन्धविश्वास ठीक नहीं है। दूसरी ओर जो विश्वासी होते हैं, वे कहते हैं, "बना दो बुद्धिहीन भगवान।" — हमें बुद्धि बिलकुल नहीं चाहिए, बुद्धि ही सारे अनर्थों की जड़ है। लेकिन ब्रह्मा कहते हैं — दक्ष, सामंजस्य यही है कि तुम अपनी कन्या का विवाह शिव से करो। इस विवाह से क्या होगा? बुद्धि और विश्वास का मिलन होगा।

ब्रह्मा ने तो समन्वय की दृष्टि से यह प्रेरणा दी, किन्तु दक्ष की समस्या क्या है? यद्यपि उन्होंने ब्रह्माजी के कहने पर सती का विवाह शंकरजी से कर दिया, लेकिन शंकरजी को देखकर उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। वे यह देखकर बड़े खिन्न हो गये कि पिताजी ने ऐसा दूल्हा चुना, जो स्वभाव से ही इतना अमर्यादित हैं कि परम्पराओं का पालन नहीं करता। शिव का यह जो स्वरूप दक्ष को दिखाई दे रहा है, क्या यही उनका यथार्थ स्वरूप है? यह मानो एक विचित्र व्यंग्य है। बुद्धि और चतुराई के साथ एक विचित्र विडम्बना है और वह दक्ष में भी है। शिव माने? समष्टि अहंकार — 'मैं' की समग्रता, जहाँ 'मैं' को छोड़कर कोई 'तू' है ही नहीं। यह समग्रता ही शिव का स्वरूप है, किन्तु दक्ष को क्या दिखाई दे रहा है?

अहंकार दो प्रकार के हैं — एक तो समष्टि अहंकार और दूसरा व्यष्टि अहंकार। एक समग्र विराट् का 'मैं' और दूसरा हर व्यक्ति का अलग अलग, खण्ड खण्ड 'मै'। इस खण्ड 'मैं' के साथ 'तू' जुड़ा हुआ है — 'मैं अच्छा तू बुरा', 'मैं बुद्धिमान तू मूर्ख', 'मैं उच्च, तू नीच'। 'अखण्ड मैं' वह है, जहाँ 'तू' है ही नहीं, केवल मैं, एक मात्र ब्रह्म। शिव वह 'मैं' है जहाँ कोई खण्ड नहीं है, जहाँ सारा व्यक्ति-व्यक्ति का, अलग-अलग, खण्ड-खण्ड 'मैं' समाप्त हो जाता है, जहाँ सारा ब्रह्माण्ड अपना ही स्वरूप दिखाई देने लगता है, ऐसा बोध होता है कि विविध रूपों में मैं ही हूँ, यह विराट् 'अहं' की अनुभूति ही शिव का स्वरूप है। इस विराट् 'अहं' को ठीक-ठीक देख लेने पर 'मैं और तू' का भाव ही नहीं रह जाता और जहाँ कोई भी पराया नहीं है, वहाँ विरोध किससे? जहाँ अपने 'मैं' को छोड़कर कोई दूसरा है ही नहीं, वहाँ किसी को क्षुद्र या छोटा समझने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? यह

वेदान्त की भाषा है। ज्ञान की दृष्टि में यह जो कुछ है, वह सब 'मैं' ही 'मै है।

भक्ति की भाषा दूसरी है। उसमें सब 'तू' ही 'तू' है। तुझे छोड़कर और कुछ है ही नहीं। इसे यूँ कह सकते हैं कि चाहे 'मैं' मिट जाय या फिर 'तू' मिट जाय, परन्तु द्वैत को मिटना ही चाहिए। 'तू' मिटकर अगर केवल 'मैं' रह जाय, व्यक्ति को सारा·ब्रह्माण्ड, सर्वत्र अपना ही स्वरूप दिखाई देने लगे अथवा 'मैं' मिटकर केवल 'तू' ही 'तू' रह जाय और सर्वत्र उसे ईश्वर ही दिखाई देने लगे, सेवाभाव का उदय हो जाय, तो फिर कौन किसका विरोध करेगा? कौन किससे ईर्ष्या, किससे कपट करेगा? जिन दुर्गुण-दुर्विचारों की चर्चा पिछले दिनों चलती रही है, उसका मूल कारण क्या है? मनुष्य के जीवन में जो भेद बुद्धि है, उसके ही कारण तो ये उत्पन्न होते और पनपते हैं। 'मैं' यदि सचमुच इतना व्यापक हो जाय कि वह सारे ब्रह्माण्ड को अपने में समेट ले, कोई पराया ही न रह जाय, तब तो विरोध करने की वृत्ति ही नहीं रह जायगी। यही 'अहं' शिव का वास्तविक स्वरूप है। लेकिन उनके इस स्वरूप को न जानकर, जो अपने क्षुद्र 'अहं' से उनकी तुलना करते हैं, उन्हें एक खण्ड 'अहं' के रूप में देखते हैं तथा उसी कसौटी के आधार पर विचार करते हैं, वे अपने क्षुद्र अहं को ही शिव पर आरोपित करते हैं। यही वृत्ति दक्ष में विद्यमान है।

दक्ष कौन हैं? दक्ष प्रजापति हैं। प्रजापति चाहते हैं कि सब कुछ मर्यादा में रहे। प्रजा को मर्यादित होना चाहिए। लेकिन उसका अतिरेक कब हो जाता है? जब दक्ष यह चाहते हैं कि शिव भी मर्यादा में रहें। यही मर्यादा का अजीर्ण है। मर्यादा का जब अतिरेक हो जायगा, तब वह मर्यादा न रहकर कारागर बन जायगी। मर्यादा को घर बनाइए, जेल नहीं। घर और जेल का अन्तर तो आप जानते ही हैं। घर में जब आप सोते हैं, तो अन्दर से सिटकनी बन्द कर लेते हैं और बाहर जाते हैं, तो बाहर से ताला लगा देते हैं। घर में रहते हुए आप घर की मर्यादाओं का पालन करते हैं, किन्तु उस मर्यादाओं का एक रूप वह भी है जो जेल में दिखाई देता है। दोनों में अन्तर क्या है? सुरक्षा दोनों जगह हैं, बल्कि जेल में सुरक्षा अधिक है। घर में तो कभी चोरी भी हो जाने का डर है, परन्तु जेल में वह डर भी नहीं है। एक व्यक्ति ने बताया कि एक सज्जन उनके साथ एक ही कमरे में ठहरे हुए थे। रात को वे खिड़की पूरी तरह से बन्द कर लेते थे। इन्होंने कहा — अब हवा कहाँ से आयेगी, खिड़कियाँ तो हवा आने के लिए होती है, फिर उनमें सीखचें लगी

हुई हैं, कोई डर नहीं है, खोल दीजिए। उन्होंने कहा — साँप आ गया तो? इस पर इन्होंने यही कहा — जब इतना ही डर है, इतनी सुरक्षा चाहिए, तब तो आपके लिए कब्र ही उपयुक्त है। उसमें कहीं कोई खिड़की, दरवाजे, कहीं कोई छोटा-सा छेद भी नहीं होता। उसी में अपने आपको बन्द कर लीजिए। इसका अभिप्राय यह है कि घर में सुरक्षा तो है, पर उसकी एक सीमा है। लेकिन अगर कोई इतनी सुरक्षा चाहे कि जहाँ किसी बात का भय न हो, तब तो वह कब्र में ही मिल सकता है। शव को ही किसी भी खतरे का कोई आभास नहीं होता। वही भय से पूरी तरह मुक्त है। घर में रहनेवाला व्यक्ति सुरक्षित होते हुए भी, उसे कुछ-न-कुछ भय तो बना ही रहता है। फिर भी बुद्धिमान व्यक्ति घर में खिड़की, दरवाजे तो बनवाता ही है, सुरक्षा के लिए खिड़की में सीखचें भी लगवाता है। वह जानता है कि सुरक्षा के लिए केवल दीवाल ही नहीं, खिड़की-दरवाजे की भी जरूरत है। जीवन का ठीक ठीक निर्वाह होने के लिए हवा आने का भी मार्ग रहना चाहिए। उसके साथ जो समस्याएँ आयेंगी, उनके लिए जितनी सावधानी वह बरत सकता है, बरतेगा। गोस्वामीजी सांकेतिक भाषा में कहते हैं —

धाए धाम काम सब त्यागी ।
मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ।।१/२१९/२

भगवान राम लक्ष्मणजी के साथ जिस समय जनकपुर में नगर-दर्शन के लिए आये, तब जनकपुर के नागरिकगण उनकी सुन्दरता को देखने दौड़ पड़े। अब यहाँ पर गोस्वामीजी के सामने समस्या आ गई। गोस्वामीजी मर्यादावादी हैं, चरित्रवादी हैं। चरित्र में मर्यादा का बड़ा महत्त्व है। जनकपुर के पुरुष निवासी यदि श्रीराम की सुन्दरता को देखकर मुग्ध हो जाते हैं, तो यह कोई अमर्यादा की बात नहीं है, किन्तु उनके सामने प्रश्न यह था कि जनकपुर की स्त्रियों ने भी भगवान के सौन्दर्य को देखा। अब अगर गोस्वामीजी को मर्यादा का अजीर्ण होता, मर्यादा को अगर उन्होंने कारागार बना लिया होता, तो यही लिख देते कि श्रीराम के सौन्दर्य को केवल पुरुषों ने देखा। स्त्रियों ने न तो देखा और न मुग्ध हुईं। पर गोस्वामीजी जानते हैं कि मर्यादा का इतना अतिरेक भी न हो जाय कि हम ईश्वर के सौन्दर्य को ही न देख सकें, मुग्ध न हो सकें, आनन्द का अनुभव न कर सकें। इस प्रकार का पातिव्रत धर्म या मर्यादा वास्तविक धर्म न होकर, केवल धर्माभास होता है। वह सत्य की ओर न ले जाकर, सत्य से दूर ले जानेवाला हो जाता है। इसीलिए

गोस्वामीजी बड़ी ही ललित साहित्यिक भाषा में मर्यादा के झरोखे से कहते हैं —

जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं ।
निरखहिं राम रूप अनुरागीं ।।१/२१६/४

— जनकपुर की स्त्रियाँ अपने अपने घर की खिड़कियाँ खोलकर श्रीराम के सौन्दर्य को अनुरागभरी दृष्टि से देखने लगीं। इसका अभिप्राय क्या है? जनकपुर की स्त्रियाँ मर्यादा में रहती हैं, लेकिन उनकी प्रेम की खिड़की खुली है। यही ईश्वर को देखने का सही मार्ग है। यही प्रेम और मर्यादा का सामंजस्य हैं। यहाँ पर प्रेम को मर्यादा के विरुद्ध मानकर मर्यादा को इतना चुस्त नहीं कर दिया गया है कि प्रेम पूरी तरह अवरुद्ध ही हो जाय। अभिप्राय यह है कि हम घर को कारागार नहीं बना लेते। घर के साथ हम मर्यादा बनाते हैं और मर्यादा में रहते हैं किन्तु जेल में? मर्यादा वहाँ भी है और पक्की मर्यादा तो वहीं है। तो फिर जेल में और घर में अन्तर ही क्या है? घर के दरवाजे में जो सिटकनी होती है, वह भीतर और बाहर दोनों ओर रहती है, किन्तु जेल में वह केवल बाहर की ओर ही होती है, भीतर की ओर नहीं। घर में हम जब चाहें तब दरवाजा भीतर से बन्द कर लें और जब चाहें तब दरवाजा खोलकर बाहर आ सकते हैं। इसके लिए हम स्वतन्त्र हैं। यही घर की विशेषता है, किन्तु कारागार का कैदी पूरी तरह परतन्त्र होता है। वह दरवाजा भीतर से तो बन्द कर ही नहीं सकता, बल्कि बाहर से बन्द कर दिया गया है। वह अपनी इच्छा से न तो दरवाजा खोल सकता है और न बन्द ही कर सकता है। इसी तरह कुछ लोगों के जीवन में मर्यादा कारागार की तरह होता है। घर की मर्यादा स्वेच्छा से स्वीकृत मर्यादा है। वहाँ बन्धन और मुक्ति में सामंजस्य हैं। वस्तुतः भेद की दृष्टि से मर्यादा की स्वीकृति भी आवश्यक है, किन्तु अन्ततः वह मुक्ति का ही साधन है, बन्धन का नहीं। (शेष आगामी अंक में)

इसलाम और वेदान्त

मुहम्मदानन्द

(१८९८ ई. की मई में स्वामी विवेकानन्द के नैनीताल की यात्रा के समय वहीं पर मुहम्मद सरफ़राज़ हुसैन उनसे मिले और उनके प्रति अतीव आकृष्ट हुए। स्वामीजी का शिष्यत्व ग्रहण करने के उपरान्त वे स्वयं को मुहम्मदानन्द कहने लगे। उन्हीं के एक पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने अपनी वह विख्यात बात लिखी थी — "हमारी अपनी मातृभूमि के लिए हिन्दुत्व और इस्लाम — इन दो विशाल मतों — वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर का समन्वय ही एकमात्र आशा है।" यह लेख मूलतः दो किस्तों में संघ की आंग्ल पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' के दिसम्बर १८९८ तथा मई '९९ के अंकों में प्रकाशित होने के बाद दिसम्बर १९८६ के अंक में पुनर्मुद्रित हुआ था। सर्वधर्म-मैत्री के पैगम्बर स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में लिखित सरफराज़ हुसैन का लेख आज के साम्प्रदायिक असहिष्णुता, अलगाव एवं सन्देह के वातावरण में विशेष महत्व रखता है। इसके हिन्दी अनुवादक डॉ. रघुराज गुप्त एक वरिष्ठ मानवशास्त्री तथा स्वामी विवेकानन्द के जीवन और विचारों के गहन अध्येता हैं। उन्होंने विभिन्न विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त डॉ. गुप्त ने रोमाँ रोलाँ की 'विवेकानन्द-जीवनी' का हिन्दी अनुवाद किया है तथा हाल ही में 'हिमालय में स्वामी विवेकानन्द' शीर्षक से दो नाटक भी लिखे हैं। अरबी भाषा के शुद्ध लिप्यन्तरण के लिए हम प्रोफेसर सैयद इकबाल अहमद साहब के आभारी हैं। — सं.)

वेदों के साक्ष्य के रूप में इसलाम पर चर्चा करने के लिये सर्वप्रथम हमें दोनों पंथों की शिक्षाओं का विवरण देना चाहिए था, और उसके बाद हम दोनों की समानताएँ दिखाते। परन्तु इस पत्रिका के पाठकों के लिए वेदान्त के सिद्धान्तों पर चर्चा करना अनावश्यक मानते हुए मैंने उसे छोड़कर इस लेख को इसलाम की शिक्षाओं तक ही सीमित रखा है। अगर यह सिद्ध किया जा सके कि आज से चौदह सौ साल पहले आरम्भ होनेवाला इसलाम उस धर्म से काफी साम्य रखता है, जो निश्चित रूप से विश्व का एक अत्यन्त प्राचीन या बल्कि सर्वाधिक प्राचीन धर्म है, तो यह सिद्ध हो सकता है कि यह नवीन धर्म भी एक सच्चा धर्म है। सभी लोग यह बात भी स्वीकार करते हैं कि यह नया धर्म प्राचीन वेदान्त से प्रभावित नहीं था। अतः इस नई पद्धति के श्रद्धालु इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि सदियों और शायद युगों के बाद भी उनके परम सत्य को एक ऐसा साक्ष्य उपलब्ध है, जिसे साक्षात ब्रह्म से उद्भूत हुआ माना जाता है। सम्भवतः इतनी भूमिका ही पर्याप्त होगी।

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति — सत्य एक है और ऋषिगण उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं।" इस वेदवाक्य को हम इस लेख का आदिसूत्र मान सकते हैं। इसलाम में इसी बात को सीधी-सरल भाषा में कहा गया है — "कुल हु वल्ला हो अहद् — जो इस उपदेश से न कम है और न ज्यादा, वह जो है, एक है।" इसलाम धर्म का पहला उसूल है — "ला इल्ला इल्लल्ला अर्थात् उस एक के सिवा (दूसरा) कोई नहीं है।" इसलाम की पूरी इमारत एकता की इसी सत्य और ठोस कल्पना की नींव पर खड़ी है। आशा है कि निम्नलिखित प्रश्नोत्तर प्रिय पाठकों को इस बात की स्पष्ट धारणा करा देंगे कि इसलाम क्या सिखाता है या फिर दूसरे शब्दों में, किस तरह वह वेदान्त के एकता तथा समन्वय की शिक्षा की पुष्टि करता है।

भाग - १ : द्वैत पद्धति

१. इसलाम शब्द का क्या अर्थ है?

— यह अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'झुकना', 'नमन','सर्मपण' अर्थात् जीने के लिए मरना, जीवित होना, समस्त गुणों तथा द्वन्द्वों से पूर्णतः मुक्त होना।

२. वह व्यक्ति कैसा है जो हस्ती (अस्तित्व) की उच्चतम स्थिति को पाने के लिए इसलाम पर ईमान लाता है?

— "यू मिन्यूना बिल ग़ैब" — जो 'न देखे हुए' अर्थात अदृष्ट में यकीन रखता है।

३. वह अदृष्ट कहाँ है?

— "वक़ी अन फुसैकुम" — तुम्हारे खुद के अन्दर।

४. वह अदृष्ट क्या है?

— अल्लाहो नूरूस समावाते अल अर्द — वह स्वर्गों और धरतियों का प्रकाश है। वह बुद्धि के परे होकर भी सबका नूर या प्रकाश है। सुबहानहू व तआला अम्मयसेफून — उसके बारे में जो कुछ कहा जा सकता है, वह उन सबके परे है।

५. क्या मरणधर्मा मनुष्य उस 'अदृष्ट' को प्राप्त कर सकता है, उस पर चिंतन कर सकता है या उसका प्रतिनिधित्व कर सकता है?

— हाँ, इन्नी जाय एलोका फिल अर्दे खलीफा — हे मानव, हम तुझे उसका एक प्रतिनिधि बना रहे हैं।

६. उसे कौन और किस उपाय (तरीके) से पायेगा?

— वल्लजीन जाहदू फीन ल नह दियन्न हुम सुबोलना — जो इसके निमित्त हममें प्रयास करते हैं, उन्हें हम अवश्य अपना पथ दिखाते हैं, अर्थात जो नूर के लिए प्रयत्नशील है, वह उसे प्राप्त करता है।

७. प्रयास कैसे करें?

— अतो अल्लाहा व अती उर्र रसूला व उलिल अम्रे मिनकुम — अल्लाह या प्रकाश जो आदेश करे, रसूल (पैगम्बर) — पूर्ण ज्ञानी जो आदेश करें, उलिल अम्रे — गुरु, आध्यात्मिक पथप्रदर्शक (अन्तरात्मा का स्वामी) आदेश करे, उसे समर्पित भाव से स्वीकार करो।

(ग) और आत्मा या अन्तरात्मा क्या है?

उलिर रूह मिन अम्रे रब्बी — अन्तरात्मा ईश्वर का 'नियम' या तर्क है और ईश्वर स्वर्गों और पृथ्वियों का प्रकाश (नूर) है, इस प्रकार अन्तरात्मा स्वर्गों और पृथ्वियों में तर्क या 'व्यवस्था' अर्थात सारतत्त्व है, वह उपादान या 'अवर्णनीय प्रकाश है।' दूसरा भी अवर्णनीय है, इसलिए यह 'अवर्णनीय' का भी 'अवर्णनीय' है।

८. अल्लाह या नूर (प्रकाश) का क्या आदेश है?

— (i) वमा खलक तुल जिन्न वलं इन्सा इल्ला ले या बुदून — सबको उसे 'जानना' है, सबको उससे 'साक्षात्कार' करना है।

— (ii) वयूकी मूनस सलाता व भिन्न रज़कना हुम युन फ़ेकून — 'इबादत' (प्रार्थना) करो अर्थात अकेले में प्रकाश के साथ गोपनीय मंत्रणा करो। क अन्नक तराहो — जैसे कि तुम उसके रू-बरू हो, तुम भी वही दो जो तुम्हें मिले, अर्थात सुखों को बराबर बाँटो, समता — सार्वभौम भाईचारा कायम करो।

८. (क) इबादत (प्रार्थना) क्यों करें?

— इन्नस सलाता तनहा अनिल फ़हसाए वल मुनकर — प्रार्थना असंगत उसूलों को दर से बाहर रखती है, पवित्रता और केवल पवित्रता की रक्षा करती है।

(ख) और क्या त्यागें?

— लनतनालुल दिर्र हत्ता तुम कि मिम्मा तुहीबून — तुम तब तक ईमानवाले सच्चे विश्वासी नहीं होगे, जब तक कि जो तुम्हें प्यारा है या जिसकी तुम्हें सबसे कम परवाह है, उसे न त्याग सको।

९. पूर्ण ज्ञानी (रसूल) का क्या आदेश है?

— या मुरोकुम बिल अदले वल अहसाने व ईताए जिलकुरबा वयनहा अनिल फहसाए वल मुनकरे वल बग़िये ययेजुकुम ला अल्ललकुम तत्कून — वह तुम्हें

समता, कृपालुता, सौजन्यता, भद्रता तथा दान देना सिखाता है और आपत्तिजनक कार्य करने से मना करता है। वह तुम्हें ये बातें इसलिए सिखाता है ताकि तुम सीधे अर्थात सन्तुलित तथा पूर्ण बन जाओ। वयुज़क की हिम अनुफ़ुसाहुन — और वह उनके हृदय को शुद्ध करता है, मन को पवित्र करता है तथा सच्चे योग में दीक्षित करता है।

१०. गुरु या आध्यात्मिक मार्गदर्शक का क्या आदेश है?

— मुतू कबला अन तनूतू — मरने से पहले मारो अर्थात अपने नीच अहं को नष्ट करो, अर्थात अपनी ख्वाहिशों (इच्छाओं) पर काबू रखो, अपने मन, इन्द्रियों तथा शरीर पर नियन्त्रण रखो और 'उसे' मारो जो तुम्हें उनका नियंत्रण नहीं करने देता। या बुनैय्या फ़िकरुका फ़ीका यक फ़ीका दाउन वदवाउन फ़ीका अन्ता जिसमुन सग़ीरुन वफ़ीका अलमुन कबीरून अन्ता उम्मुल — ओ मेरे बेटे, तेरे अन्तर में, तेरे अन्दर अपना ध्यान तेरे लिए काफ़ी है। रोग और निदान दोनों ही तेरे अन्दर है, तेरा शरीर लघु है, पर तेरे ही अन्दर विराट क्षेत्र है। तू ही किताबों (शास्त्रों) या ज्ञान का जन्मदाता है।

जहाँ तक इस अकिंचन लेखक द्वारा सम्भव हुआ, उसने इसलाम के सिद्धातों पर आधारित सारतत्त्व को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। अत्यन्त संक्षेप में वह इस प्रकार है —

(१) एक आत्म-सत्ता, एक पूर्ण समग्र (Perfect whole) जैसे 'कुछ' का अस्तित्व 'है'। अलस्तो बैर ब्बीकुम का लू बला — क्या मैं तेरा ईश्वर नहीं हूँ? उन्होंने जवाब दिया, "हाँ"। इन्नी अनलल्लाह — मैं अल्लाह हूँ, समष्टि और आत्मा हूँ। हुअल लाहुल लज़ी लाइलाहा इल्लाहू — 'वह' ऐसा है कि वैसा 'उसके' सिवा कोई नहीं है।

(२) 'सब' में आत्मसत्ता जैसा 'कुछ' व्यक्त होता है, वह दृश्यमान, कल्पनीय आदि है। वह पूर्ण 'समग्रतः' व्यक्त होता है — अल्लाहो नूरुसममावाते वल अर्द — खुदा (ईश्वर) स्वर्गों और पृथ्वियों का प्रकाश (नूर) है, अर्थात् हर चीज़ उसी की अभिव्यक्ति है। अवल अव्वलों वल आखिरो व जाहिरों वल वासिन — वह आदि है, वह अन्त है। वह विकास है, वह संकुचन है। क्या यह शुद्ध वेदान्त नहीं है? (देखिये स्वामी विवेकानन्द का "पिण्ड और ब्रह्माण्ड" विषयक व्याख्यान)। उस अव्यक्त तथा आत्म-सत्तात्मक 'कुछ' के बिना कुछ भी व्यक्त तथा ज़ाहिर और इस प्रकार दृश्य तथा कल्पित नहीं हुआ होता।

(३) सब कुछ जो इस प्रकार उस 'कुछ' की ही अभिव्यक्ति है, वह उस 'कुछ'

का साक्षात्कार कर सकती है। व मा खलकतुल जिन्न वल इन्सा इल्ला लेयाबुदून — सभी को ज्ञान तथा अनुभूति प्राप्त करनी है।

(४) पूर्ण साक्षात्कार की स्थिति 'सब' और 'कुछ' के समस्त भेद का सम्पूर्ण अभाव है, अर्थात् पूर्ण 'समग्र' की अनुभूति है। वा यबक़ा वज़हो रब्बेका — और वह प्रकाश (नूर) का मात्र दर्शक रहेगा।

इन सिद्धान्तों के मार्गदर्शन में इसलाम के द्वैतवादी सम्प्रदाय की व्यवहारिक हिदायतें इस तरह शुरू होती हैं —

(१) सब चीजों का एक आध्यात्मिक अस्तित्व, स्रष्टा, संरक्षक और संहारक है। इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलेहे राजेऊन — निश्चित रूप से हम उसी से आए हैं और उसी में लौट जाएँगे।

(२) आत्मा (रूह) एक आइने की तरह है जिसमें वह प्रतिबिम्बित होता है — वइज़ अरज़नल अमानताअलस समावाते वल अर्दे प अबैना अयीं यह, मिलना हा व हमला हल इन्सान। और जब स्वर्गों तथा पृथ्वियों को हमने अपना 'विश्वास' अर्पित किया, तो उन्होंने इसे लेने से इन्कार कर दिया, परन्तुआदमी ने उसे स्वीकार कर लिया, तात्पर्य यह कि इन्सान में वह प्रकाश-स्वरूप विश्वास पूर्ण रूप से विद्यमान है।

(३) कर्म 'जीवन' को नियंत्रित करता है — इन अहसन्तुम ले अनफुसेकुम वइन असातुम फ़लहा। अगर तुम भला करते हो तो वह तुम्हारे ही लिए है। मन एहतदा कईन नमा यह तदी लेन फुसिह, व मन ज़ल्ला फ़इन्नमा यज़िल्लो अलेहा — जिस किसी ने सही राह पकड़ी, उसने निश्चय ही अपना भला किया और जिस किसी ने ग़लत राह पकड़ी, उसने अपना ही बुरा किया।

मोटे तौर पर यह इसलाम के कर्मयोग की या जनसाधारण के लिए सर्वसुलभ शिक्षा है। कर्म का मार्गदर्शन और नियंत्रण करने के लिए धार्मिक ग्रंथों में उपयुक्त और विस्तृत निर्देश दिए गए हैं, जिनका अपने तथा मानवता के हित में इसलाम के अनुयायियों को पालन करना चाहिए। प्रार्थना, दान, भ्रातृत्व, विचार और कर्म की शुद्धता को विविध प्रकार से प्रोत्साहित किया गया है। सबके मार्गदर्शन के लिए व्यवहारिक निर्देश दिए गए हैं उनका अनुपालन सुरक्षित और सही माना गया है। अनुपस्थिति (प्रार्थना से विरति), स्वार्थ, अहंकार तथा समस्त अशुचिताओं को निरुत्साहित किया गया है। इस प्रकार एक बार अनुशासित होकर उच्चतर भूमि पर खड़ा हो जाने के बाद आदमी आत्मा के विषय में सूक्ष्मतर हिदायतों को पाने के

योग्य हो जाता है। और यही उसका लक्ष्य है। इसलाम में आत्म-अनुशासन का बहुत महत्व है। शरीर, इन्द्रियों तथा मन पर नियंत्रण को मानव जीवन का प्रथम वरदान माना गया है। निश्चित, सरल तथा सहज व्यावहारिक निर्देशों द्वारा इसे समस्त मानवता के लिए प्रदान किया गया है। इसलाम में इसे ही सामान्यतः शरीयत माना जाता है।

भाग दो : अद्वैत पद्धति

इसलाम के अनुशासित साधक को दी जाने वाली सूक्ष्म हिदायतें अपने प्रभाव में विशुद्ध वेदान्ती हैं, यद्यपि उनकी कार्य-प्रणाली कुछ बातों में भिन्न है। उदाहरण के लिए, इसलाम मन को एकाग्र करने और भक्ति के संचार के लिए मूर्तिपूजा के साधन को स्वीकार नहीं करता। किन्तु इसलाम की कुछ संगठित बिरादरियों में यही लक्ष्य गुरु पर ध्यान केन्द्रित करके प्राप्त किया जाता है, जिसे उस समय तक शिष्य का सब कुछ — इष्ट माना जाता है। शिष्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी हस्ती को गुरु में विलीन कर दे और निःस्वार्थ बन जाए। इस प्रकार अपने स्वतंत्र अस्तित्व से बेखबर, वह ध्यान की अन्य निश्चित अवस्थाओं से गुज़रकर पैगम्बर पर अपना ध्यान लगाता है और अन्ततः ईश्वर पर। इस प्रकार जब वह ईश्वर से एकाकार हो जाता है, उसमें खो जाता है, तब उसे मुवहहिद (खुदा को एक माननेवाला) कहते हैं। आप इस मार्ग से हिन्दू धर्म में और उस मार्ग से इसलाम में जा सकते हैं, दोनों पद्धतियों का लक्ष्य एक ही है अर्थात् परमात्मा से एकत्व का अनुभव। आत्मानुभव प्राप्ति के राजयोग के निर्देश इसलाम में निहित निर्देशों से नाम मात्र को मूल पद्धति से भिन्न लगते हैं। इसलाम मानव शरीर में ज्योति के छह केंद्र मानता है, जो निम्न प्रकार हैं —

निश्चित तरीक़े और अभ्यास से इन केन्द्रों को अन्दर खोजा जाता है और तब मनुष्य का अन्तःकरण पूर्णतः प्रकाशित हो जाता है। बाद में यही ज्योति बाहर भी दिखती है, तब इस ज्योति की समानता और एकता सर्वत्र अनुभव होती है और इस प्रकार साधक मुवहहिद बन जाता है।

दार्शनिक वृत्ति के अनुशासित साधक के लिए इस एक प्रश्न का उत्तर में 'क्या हूँ', आत्मानुभव का आधार है। यह अनुभव ही वेदान्त और इसलाम दोनों का समान लक्ष्य है। निम्नलिखित रहस्य गुरु के निश्चित निर्देशों से उद्घाटित होते हैं—

मैं शरीर नहीं हूँ।
मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ।

मैं मन नहीं हूँ।
मैं यह नहीं हूँ।
बुद्धि का केंद्र जिसे 'रहस्यपूर्ण' कहा गया है
मस्तक, जिसे 'छिपा हुआ' कहा गया है
बाएँ स्तन के निचले केंद्र को 'दिल' कहा गया है।
छाती के केंद्र को 'गुह्य' कहा गया है।
दाहिने स्तन के निचले केंद्र को 'जीवात्मा' कहा गया है।
प्रबल नाभि केंद्र को 'अहं' कहा गया है।
मैं वह नहीं हूँ।

जब तक कि वास्तविक सत्ता (Reality) नहीं पाई जाती, जो प्रत्येक 'अहं' ('I') में विद्यमान है, सर्वत्र, यह 'स्व' (Self) है। यह वह है।

यह युक्ति दी जा सकती है कि एकत्व से सम्बन्धित अनेक चर्चाओं में जिन पर भारत के प्राचीन मनीषियों ने सूक्ष्मता से विचार किया है, मुसलमानों द्वारा अछूते रहे हैं। किन्तु यह स्मरण रखना जरूरी है कि इसलाम में एक लक्ष्मण रेखा अत्यन्त विवेकपूर्वक खींची गई है, जिसमें यह बताया गया है कि किन विषयों पर सामान्यतः सार्वजनिक रूप से चर्चा की जाए और कौन से विषय सक्षम और चुनींदा पात्रों को ही बताने योग्य है। समस्त उच्च-सूक्ष्म निर्देश जो आत्म-दर्शन से सम्बन्धित हैं, उन्हें इल्मे-सीना कहा गया है, जिनका ज्ञान हृदय में रखा जाता है। ऐसे निर्देश गुरु शिष्य को देता है और वह उसकी अमानत है। पिछली कुछ शताब्दियों में इस निर्देशों को मलफूज़ात की — संतों की वाणी की श्रेणी में रखा गया है। इनमें इसलामी ज्ञान की मूल्यवान निधि है, जिन्हें कोई भी सजग विद्यार्थी विशुद्ध वेदान्ती सिद्ध कर सकता है।

उच्च-सूक्ष्म निर्देशों को उपरोक्त विधि से प्रयोग में लाने की विशिष्टता से कम-से-कम यह उद्देश्य पूरा होता है कि इसने इसलाम के सामान्य निर्देशों को अधिक व्यावहारिक बना दिया है। यदि सूक्ष्म को स्थूल से मिला दिया जाता, तब शायद ऐसा न हो पाता। यही इसलाम की मुख्य विशेषता है।

मेरा यह विश्वास है कि इसलाम ने वेदान्त के लक्ष्य को भलीभाँति पूरा किया है और उसने धर्म को पर्याप्त व्यावहारिक बनाया है।

□

तुलसी की दृष्टि में नारी

श्रीमती सावित्री झा

कतिपय विद्वानों के मत में तथा सामान्यतः जनमानस में एक ऐसी धारणा बनी हुई है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने नारी के साथ न्याय नहीं किया। परन्तु ऐसी धारणा नितान्त भ्रामक है।

सियाराममय सब जग जानी

— कहकर जिन्होंने नारीमात्र में ही जगदम्बा वैदेही की झलक पायी है, जिनकी वे पग-पग पर वन्दना करते हैं, काव्य का प्रारम्भ जहाँ वे गुरु, गणेश तथा अपने इष्टदेव श्रीराम की स्तुतियों से करते हैं, वहीं वे जगदम्बा सीता की भी वन्दना करना नहीं भूलते —

सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्। (बाल का.)

— समस्त प्रकार से कल्याण करनेवाली श्रीराम की प्रियतमा सीताजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

ऐसी स्थिति में हमें 'मानस' के समस्त स्त्री-पात्रों का गहराई से पर्यवेक्षण करना आवश्यक हो जाता है।

सर्वप्रथम तो हम बालकाण्ड में भगवान शंकर की प्रथम पत्नी दक्षसुता सती के प्रसंग में हम देखते हैं कि अपने अज्ञानवश पति के इष्टदेव श्रीराम के प्रति सन्देह करके वे जगदम्बा श्री सीताजी का रूप धारण करती हैं, जिसके फलस्वरूप भगवान शंकर पत्नी से अधिक माँ की महिमा मानते हुए, उन्हें पत्नी अधिकार से वंचित कर देते हैं। परन्तु यहाँ दीख पड़ता है कि जहाँ आदर्श तथा सिद्धान्त आड़े आते हैं, वहाँ मनुष्य को कितना बड़ा त्याग करना पड़ता है। शंकरजी को भी इस कष्ट से उबरने के लिए अपने इष्टदेव राम में ध्यानमग्न होकर समाधिस्थ होना पड़ता है —

शंकर सहज सरूप सम्हारा। लागि समाधि अखण्ड अपारा।

— शंकरजी अपने स्वरूप को सम्हालते हुए समाधिस्थ हो गए।

इधर सती भी कम दुखी नहीं थी, परन्तु अपने अपराध को समझकर कुछ बोल नहीं सकती थीं —

पति परित्याग हृदय दुख भारी। कहहि न निज अपराध विचारी।

इतना ही नहीं दुखी मन से सती जब पितृगृह में यज्ञ की बात सुनकर, वहाँ

जाने को उद्यत होती हैं, तो शंकरजी उनके मन की स्थिति को समझते हुए, निमन्त्रण न आने के कारण उचित न होते हुए भी, जाने की अनुमति दे देते हैं। वहाँ पहुँचने पर सती को जब पिता के द्वारा की गई अपने पति की अवमानना का बोध होता है, तो क्रोध में आकर वे योगाग्नि से स्वयं को भस्म कर लेती है। शंकरजी पत्नी का मरण सुनकर अपने गणों द्वारा यज्ञ का विध्वंस तो करवाते ही हैं, सती-वियोग में उनकी स्वयं की क्या स्थिति हो जाती है —

तब अति सोच भयउ मन मोरे। दुखी भयउ वियोग प्रिय तोरे।

वे सती के प्रति प्रेममय भावनाओं से अभिभूत होकर विरहियों के सदृश यत्र तत्र भटकते फिरते हैं —

सुन्दर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउ विरागा। (उ. का.)

सती द्वारा पार्वतीजी के रूप में पुनर्जन्म लेने पर वे पुनः वैवाहिक बन्धन स्वीकार कर उन्हें पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। पत्नी के प्रति वास्तविक निष्ठा का यह एक सजीव उदाहरण है।

आगे कथा के क्रमिक विस्तार में साक्षात् ममता की प्रतिमूर्ति माँ कौशल्या, सेवा भाव की जीवन्त निदर्शन माँ सुमित्रा हैं, जिनसे लक्ष्मण जैसे पुत्र ने जन्म लेकर राम-सीता की सेवा का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। फिर माँ कैकेयी हैं, जिनकी कर्तव्यनिष्ठा सम्पूर्ण रामगाथा की नींव बन गई। राजनीति के परिप्रेक्ष्य में देखें तो, जहाँ दशरथ जैसे महान अवधनरेश अपने पुत्रमोह के वशीभूत होकर देश तथा समाज की सुरक्षा का ध्यान विसार बैठे थे, वहाँ माता कैकेयी ने ही वह भूमिका निभायी, जिसके द्वारा वे तमाम लांछनाओं को भी सहन करके एक बहुत बड़ी भूल होने से बचा लेती हैं। कैसे?

अयोध्या में बैठे-बैठे भगवान श्रीराम के लिए पूरे भारत में फैली अजेय हो रही आसुरी शक्तियों का संहार कर पाना सम्भव नहीं था। उनका स्वयं का सैन्यबल भी पर्याप्त नहीं था। जैसा कि परवर्ती घटनाओं से सिद्ध हुआ कि इसके लिए दूर-दूर तक की जनजातियों के बीच चेतना जगाकर उन्हें संगठित करते हुए उनकी निष्क्रियता को दूर करना आवश्यक था। और इसके लिए श्रीराम का वनवास भी अत्यन्त आवश्यक था ताकि वे उन लोगों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर परिस्थितियों को समझ सकें तथा दूर-दूर के शासकों की सहायता से अपना अवतार-कार्य पूरा कर सकें। इसी कारण उन्होंने श्रीराम को वनवास हेतु भेजने का इतना कठोर निर्णय ले डाला।

राम के प्रति उनका प्रेम एकनिष्ठ था। राम के गुणों का जितना बोध उन्हें था, उतना शायद अन्य किसी को नहीं। वे कहती हैं —

तुम अपराध जोगु नहि ताता। (अ. का.)

वे यह भी जानती थी कि राम में ही वे अलौकिक शक्तियाँ हैं, जो अजेय असुरों का विनाश करके देश तथा समाज को सुरक्षा प्रदान कर सकती हैं। वे एक ऐसी नारी हैं, जो सबसे अभिशिप्त होकर भी, उपहास का पात्र होकर भी दृढ़ बनी रहती हैं। श्रीराम के अयोध्या लौटने के बाद भी तुलसीदासजी उन्हें सर्वप्रथम माँ कैकेयी का ही वात्सल्य एवं आशीर्वाद प्राप्त करवाने उनके निवास पर ले जाते हैं—

प्रभु जानी कैकेयी लजानी, प्रथम तासु गृह गएउ भवानी। (उ. का.)

अब हम थोड़ा उन विवादास्पद चौपाइयों की ओर दृष्टिपात करते हैं, जिनमें नारियों पर आक्षेप बताया जाता है। द्रष्टव्य है कि वे सभी 'मायारूपी नारि' ही रही है। बालकाण्ड में भगवान ने नारदजी को 'मायारूपी राजकुमारी' से ही बचाया। तुलसीदासजी इस बात को निम्न कथन से स्पष्ट भी करते हैं —

जब हरि माया दूरि निवारी, नहिं तहँ रमा न राजकुमारी। (बा. का.)

भक्त के प्रति भगवान अपने उत्तरदायित्व को निभाना कैसे भूल जाते। भक्त एवं ज्ञानी होते हुए भी नारद माया के पचड़े में पड़ ही गए। तभी श्रीराम के शब्दों में तुलसी उन्हें ज्ञान करवाते हैं —

तिन्ह महँ अति दारुड़ दुखद मायारूपी नारि। (अ. का.)

राक्षसों के संहार के लिए श्रीराम को सीता का माध्यम बनाना पड़ा। अतः अनुपम शक्तियों से सम्पन्न श्रीराम को सीताजी का अस्तित्व-लोप करके, केवल उनकी परछाई को रहस्यात्मक ढंग से रखना पड़ा। अन्यथा सीता जैसी सती नारी का रावण स्पर्श तक नहीं कर पाता। युद्धोपरान्त उसी रहस्यात्मक नाटक की आवृति करवाकर तुलसी सीता के सत्त्व की रक्षा करते हैं।

सीताजी के ऊपर यदि उन्हें पूर्ण विश्वास न होता, तो समाज तथा धर्म की रक्षा और अखिल विश्व के कल्याण के लिए वे अपनी प्रिया को ही क्यों चुनते? जिस शक्तिसम्पन्न नारी के सम्बल, धैर्य एवं सहनशीलता की उन्हें आवश्यकता थी, वह उन्हें कहाँ मिलती? बिना अधिकार उसका प्रयोग भी कैसे करते ! अतः यह उनके अगाध विश्वास का एक अमिट उदाहरण है। यहाँ सीता माता के प्रति कवि के शब्द श्रद्धा, भक्ति तथा विश्वास से सराबोर हो जाते हैं —

जय कौशलेश महेश वंदित चरण रति अति निर्मली। (लं. का.)

मायावी शक्तियों के संहार के लिए उन्हें भी माया का ही आवरण ओढ़न. पड़ा। श्रीराम की इस माया को कोई भी समझ नहीं सका। कवि के शब्दों में —

प्रभु चरित काहु न लखे। (लं.का.)

इस विशद काव्य के अन्त में हम देखते हैं कि जिस वाल्मिकि रामायण का आधार लेकर गोस्वामीजी इस रामगाथा का सृजन करते हैं, उसी के उन अंशों को छोड़ देते हैं या परिमार्जित कर देते हैं, जिनमें नारी जाति की अवमानना होती है और अपने कथानक की 'दोउ सुत सुन्दर सीता जाये' तथा 'दोई-दोई सुत सब भ्रात्‌न्‌। केरे' — कहकर पटाक्षेप कर देते हैं। सीता के समान परम पवित्र तथा उत्कृष्ट चरित्रवाली नारी के परित्याग का वे अपनी लेखनी से वर्णन नहीं करते।

इसके अतिरिक्त कथावस्तु के क्रमिक विकास में उन्होंने अन्य श्रेष्ठ स्त्रियों का भी परिचय करवाया है। अरण्य काण्ड में अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया न केवल एक धर्मपरायण, पतिव्रता नारी हैं, अपितु ज्ञानी तथा दूरदर्शी भी हैं। तभी तो —

अनुसूया के पद गहि सीता।

सीता ऋषिपत्नी के चरणस्पर्श करती है — यह तो उचित है, परन्तु यहाँ महत्वपूर्ण बात है अनूसूयाजी की दूरदृष्टि, जिसके द्वारा वे सीताजी के जीवन में आनेवाली भावी विपत्तियों से संरक्षण, सतीत्व की रक्षा के लिए उन्हें दिव्य वस्त्र प्रदान करती है।

दिव्य वसन भूषण पहिराए। (अ. का.)।

अन्यथा वनवास के दौरान दिव्य-वस्त्र तथा आभूषणों का भला क्या औचित्य था। अतः इन शब्दों के अन्तर्हित भाव को समझना अति आवश्यक है।

भीलनी के चरित्र ने तो निम्न स्तर की नारियों का मस्तक ऊँचा कर दिया है, जो भक्ति तथा पवित्रता की प्रतिमूर्ति हैं।

किष्किन्धा काण्ड में बाली की पत्नी तारा भी उतनी ही गुणवान तथा ज्ञानी के रूप में निरूपित होती है। उसके प्रति श्रीराम की श्रद्धा कवि निम्मलिखित पंक्तियों में व्यक्त करते हैं —

मूढ़ तोही अतिशय अभिमाना, नारि सिखावन करसि न काना।

इससे स्पष्ट है कि कयासूत्र से गोस्वामीजी ने श्रेष्ठ स्त्रियों के चरित्र को यथासम्भव उभारने का प्रयास किया है।

अन्त में, उच्च स्तर का एक अन्य भी नारी चरित्र लंकाकाण्ड में दृष्टिगत होता है, वह है रावण की पत्नी मन्दोदरी का। वह बारम्बार भविष्य की चित्रण करते हुए रावण को सचेत करती है। वह जानती है कि उसके पति की हठवादिता लंका पर भारी पड़ेगी। वह कहती है —

कन्त समुझि मन तजहुँ कुमतिही।
सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही।।

इस प्रकार ऐसा कहीं भी नहीं लगता कि गोस्वामीजी ने नारी के साथ कोई अन्याय किया हो। रही बात किन्हीं ऐसे स्थलों की, जहाँ नारी की भर्त्सना की गई है। यहाँ भी पाठक भूल करते हैं। नारी या पुरुष — चाहे कोई भी पात्र क्यों न हो, उसके मोह अथवा भ्रान्ति के वशीभूत हो जाने पर गोस्वामीजी ने उसे माफ नहीं किया है। उदाहरण के लिए परम ज्ञानी नारदमुनि, पक्षिराज गरुड, महापण्डित तथा परमभक्त काकभुशुण्डि — चाहे जो भी क्यों न रहा हो, जब कभी वे मायामूढ़ हुए तो उन्हें शिक्षा अवश्य लेनी पड़ी। इन्द्रपुत्र जयन्त को भी दण्ड भोगना पड़ा —

कीन्ह मोहवश द्रोह यद्यपि तेहि कर वध उचित।
प्रभु छाँड़ेहु करि छोह को कृपाल रघुबीर सम। (अ. का.)।

केवल एक नेत्र से रहित करके छोड़ देते हैं —

एकनयन करि तजा भवानी।

इस प्रकार यथाप्रसंग जहाँ सती जैसी नारी भी दण्डित होती हैं, वहाँ शूर्पणखा जैसी स्त्री के नाक-कान काटना भला कैसे अनुचित माना जा सकता है? ऐसी मायावी, कपटी तथा दुष्ट नारी को ताड़न का अधिकारी बताना उचित ही प्रतीत होता है।

निष्कर्ष के रूप में यही कहना समीचीन होगा कि स्त्री हो या पुरुष — प्रसंगवश जहाँ जैसा भी चरित्र आया है, वह कवि के द्वारा अपने स्वाभाविक रूप में ही निरूपित हुआ है।

श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता

स्वामी अभेदानन्द

(१९०७ से १९११ के बीच 'विश्व के महान परित्राता' विषय पर न्यूयार्क (अमेरिका) के 'ब्रुकलिन कला तथा विज्ञान संस्थान' के तत्त्वावधान में श्रीरामकृष्ण के एक अन्तरंग पार्षद स्वामी अभेदानन्दजी ने अनेक व्याख्यान दिये थे, जो बाद में पुस्तकाकार तथा उनकी सम्पूर्ण ग्रन्थावली के पाँचवें खण्ड में संकलित हुए। श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता से सम्बन्धित प्रस्तुत लेख उन्हीं व्याख्यानों में से एक के पूर्वार्ध का हिन्दी अनुवाद है, जो उनके जीवनकाल में ही सुप्रसिद्ध 'कल्याण' मासिक के १९३६ ई. के विशेषांक में प्रकाशित हुआ था। इस लेख की उपादेयता को देखते हुए वहीं से 'विवेक-ज्योति' के पाठकों के लिए इसे पुनर्मुद्रित किया जा रहा है। — सं.)

भारतवर्ष के दिव्य पुरुष भगवान श्रीकृष्ण मानवजाति के उद्धारक माने जाते हैं और उनके उपदेश 'भगवद्गीता' के नाम से प्रसिद्ध हैं। जिन लोगों ने इन दिव्य उपदेशों को पढ़ा है, वे बहुधा उपदेष्टा के अगाध ज्ञान पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं और पूछते हैं कि ये श्रीकृष्ण कौन थे, किस समय हुए और उनके ग्रन्थ कौन-कौन से हैं? पाश्चात्य विद्वानों तथा ईसाई पादरियों ने बहुधा श्रीकृष्ण के जीवन और उपदेशों की ईसामसीह के जीवन और उपदेशों के साथ तुलना की है। उनमें से कई तो इस बात को भी स्वीकार नहीं करते कि वास्तव में श्रीकृष्ण नामक कोई व्यक्ति संसार में हुआ था। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कृष्ण प्राचीन भारत के एक पौराणिक देवता मात्र हैं, वास्तव में वे इस संसार में कभी विद्यमान ही नहीं थे!

श्रीकृष्ण तथा ईसा के जीवन में जो अद्भुत सादृश्य है, उसे देखकर कई लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि श्रीकृष्ण की जीवनी और उपदेशों की रचना ईसा के जीवन और उपदेशों के आधार पर की गई है; और पहले पहल जब इस देश पर ईसाई पादरियों ने आक्रमण किया था, उस समय यहाँ हिन्दुओं में श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रचार नहीं था। इतना ही नहीं, कुछ ईसाइयों को तो भारतवर्ष में उनके अपने धर्म से इतना मिलता-जुलता धर्म देखकर बड़ी हैरानी हुई। उन्होंने इसका कारण यही समझा कि शैतान ने उनके मसीह के इस लोक में पधारने का हाल पहले से

ही जानकर उनके जन्म के पूर्व ही, उन्हीं के धर्म के सदृश एक दूसरा धर्म यहाँ स्थापित कर दिया है।

ईश्वर के साक्षात् अवतार और मनुष्य जाति के उद्धारक भगवान श्रीकृष्ण के अनुपम चरित्र एवं दिव्य शक्तियों ने हिन्दुओं के हृदय में श्रद्धा, भक्ति तथा प्रेम की जो ज्वाला प्रज्वलित की, वह ईसाई विद्वानों तथा पादरियों की इन चमत्कारपूर्ण कल्पनाओं से शान्त नहीं हो सकी।

पश्चिम से विजय और धर्मान्धता की लहरें उमड़-उमड़ कर भारतवर्ष में आयीं और अपने भयानक प्रवाह में यहाँ के लाखों-करोड़ों मनुष्यों और अत्यन्त महत्वपूर्ण आध्यात्मिक स्मृतिचिह्नों को बहा ले गयीं। परन्तु, फिर भी पतितोद्धारक श्रीकृष्ण का अलौकिक आदर्श तथा आध्यात्मिक प्रभुत्व भारत में आज भी हजारों वर्षों से हिमालय की तरह अटल भाव से स्थित है। उन प्रबल तरंगों का वेग तथा उनकी घातक शक्ति इसको तनिक भी हिला नहीं सकीं। धर्मान्ध मुसलमानों ने भारत पर चढ़ाई की। उनके एक हाथ में कुरान की किताब और दूसरे में तलवार थी। उन्होंने हिन्दू-समाज में खलबली और विभीषिका उत्पन्न कर दी, श्रीकृष्ण के मन्दिरों का ध्वंस किया, देश को लूटा, बेचारे निरपराध पुजारियों और उनके परिवार तथा साधु-महात्माओं की हत्या की और निरे पाशविक बल के प्रयोग से असंख्य भारतवासियों को शिखा-सूत्रहीन किया। इतना सब होते हुए भी भगवान श्रीकृष्ण की अनन्त शक्ति, काल का उपहास करती हुई आज भी ज्यों-की-त्यों विद्यमान है। हिन्दुओं के हृदय पर अब भी उन्हीं का अधिकार है और जब तक हिन्दू-जाति रहेगी, वह अक्षुण्ण बना रहेगा।

वर्तमान युग में ईसाई पादरी पाश्चात्य जातियों के अपार धन-बल की सहायता से श्रीकृष्ण के उच्च आसन पर ईसा मसीह को प्रतिष्ठित करने और श्रीकृष्ण-भक्तों को धर्मान्तरित करने के लिये जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु श्रीकृष्ण ने जो अपार ईश्वरीय शक्ति प्रकट की, वह निश्चय ही इन सामान्य मनुष्यों की व्यर्थ चेष्टाओं का सामना करने में समर्थ होगी।

श्रीकृष्ण का नाम इस विशाल देश के कोने-कोने में और इस प्राचीन आर्य-जाति के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर विराजमान है। उनका मधुर तथा पावन नाम — सोते, जागते, काम करते, सुख में, दुःख में, विपत्ति तथा संकट के समय और उत्सवों तथा राष्ट्रीय त्योहारों के अवसर पर — सर्वदा अतिशय श्रद्धापूर्वक लिया जाता है।

भारतवर्ष के छोटे-छोटे गाँवों की अपढ़ जनता भी मानव-जाति के पथप्रदर्शक भगवान श्रीकृष्ण के अलौकिक कार्यों तथा उनकी बाल-लीलाओं के गीत बना-बनाकर गाती रहती है। जय-पराजय में, विवाहमण्डप और श्मशान में, जन्म और मरण के समय उनके करोड़ों भक्त अतिशय श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम के साथ उनका नाम लेते हैं। अधिक क्या लिखें, उनकी दृष्टि में संसार में भला बुरा जो कुछ भी होता है, उसके साथ श्रीकृष्ण का सम्बन्ध अवश्य रहता है। पिछले तीन हजार वर्षों से उन्होंने सारी हिन्दू-जाति के हृदय पर अधिकार कर रखा है और वे सर्वप्रिय भगवान और सबके उद्धारक माने जाते हैं।

हिन्दुओं के लिए श्रीकृष्ण के जीवन की घटनाएँ उतनी ही सच्ची और ऐतिहासिक है, जितनी ईसाइयों के लिए ईसा मसीह की। यह बात तो सभी लोग जानते हैं कि ईसा मसीह के जीवन के सम्बन्ध में बाइबिल के संक्षिप्त संस्करणों में जितनी भी कथाएँ वर्णित हैं, उनकी सत्यता को सिद्ध करने के लिए अब तक कोई भी व्यक्ति सर्वमान्य प्रमाण नहीं दे सका है। उलटे यूरोप और अमेरिका के कई अत्यन्त योग्य विद्वानों और उच्च श्रेणी के समालोचकों ने बार-बार इस बात को अस्वीकार किया है कि ईसा मसीह नामक कोई ऐतिहासिक व्यक्ति हुए थे। फिर भी, इन विद्वानों के मत का कुछ भी विचार न कर ईसाई लोग यह मानते हैं कि उनके प्रभु ईसा एक ऐतिहासिक पुरुष थे। यही नहीं, वे उनकी पूजा करते हैं, आदर करते हैं और मृत्यु के बाद उनकी कृपा से ही मुक्ति प्राप्त करने की आशा करते हैं। हिन्दुओं के भगवान श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में भी यही बात है। भारतवर्ष में भी कुछ लोग ऐसे हुए हैं, जो श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष नहीं मानते, कुछ लोगों ने इन्हें पौराणिक देवता माना है और कुछ लोगों ने इनके जीवन की घटनाओं की सत्यता के सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाण भी बतलाये हैं। किन्तु आम जनता इस प्रकार की चर्चाओं को सर्वथा निरर्थक समझती है। उनका यह विश्वास है कि श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक पुरुष थे और इस देश में आविर्भूत होकर, संसार में अपना आध्यात्मिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिये उन्होंने अपनी अलौकिक शक्तियाँ प्रकट की थीं। हम श्रीकृष्ण के जन्म का ठीक-ठीक समय, तिथि और वर्ष बता सकें या भले ही न बता सकें, परन्तु इतना निश्चित है कि ईसवी सन् आरम्भ होने के सैकड़ों वर्ष पूर्व भी श्रीकृष्ण का नाम भारतवर्ष में प्रसिद्ध था। ईसा मसीह के जन्म से सैकड़ों वर्ष पूर्व अधिकांश हिन्दू श्रीकृष्ण की भक्ति करते थे, आदर करते थे और पूजा करते थे। यही नहीं,

वे उन्हें ईश्वर का अवतार और मानव-जाति का उद्धारक भी मानते थे। इस बात के समर्थन के लिये सबसे अधिक विश्वसनीय प्रमाण हमें सिल्यूकस के यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के लेखों में मिलता है, जो ईसवी सन् से लगभग ४०० वर्ष पूर्व इसी देश में सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहता था।

ईसवी सन् से ३३३ वर्ष पूर्व यूनानी बादशाह सिकन्दर ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी। उसके छः वर्ष बाद अर्थात् ईसवी सन् से ३२७ वर्ष पूर्व उसका देहान्त हो जाने के बाद सिल्यूकस निकातर उसका उत्तराधिकारी हुआ और फारस देश (ईरान) की फरात नदी से लेकर सिन्धु नदी तक के सारे प्रान्त पर राज्य करने लगा। उसने भारतवर्ष के चक्रवर्ती सम्राट् चन्द्रगुप्त के दरबार में अपना एक राजदूत भेजा था। ये सारी बातें ऐतिहासिक है। मैगस्थनीज कई वर्षों तक भारतवर्ष में रहा और उसने अपने अनुभवों के सम्बन्ध में कई लेख लिखे, जिन्हें यूनानी इतिहासकार एरियन ने सुरक्षित रखकर प्रकाशित किया था। अन्यान्य बातों के अतिरिक्त मैगस्थनीज ने लिखा है — "वे भारतीय हरकुलिस[1] अर्थात् श्रीकृष्ण शारीरिक एवं आत्मिक बल में सबसे बढ़े-चढ़े थे, उन्होंने सारी पृथिवी और समुद्रों को पापमुक्त कर दिया था और कई नगर भी बसाये थे। उसके इस संसार से चले जाने के बाद लोग उन्हें ईश्वर की भाँति पूजने लगे। भारतवर्ष की 'शौरसेनी' (यादव) जाति के लोग इस हरकुलिस की विशेष रूप से पूजा करते हैं। मथुरा और क्लीसोबरा नाम की दो बड़ी नगरियों पर इस जाति का आधिपत्य है और इन दोनों के बीच में जोहारीज अर्थात् यमुना नदी बहती है।"[2]

कुछ विद्वान इस क्लीसोबरा अथवा क्रीसोबरा नगरी को कालिसपुर[3] का अपभ्रंश मानते हैं, किन्तु प्लिनी नामक यूनानी इतिहासकार ने इसे कृष्णपुर (कृष्ण की नगरी) का विकृत रूप बतलाया है, जिसे श्रीकृष्ण ने बसाया था और जिससे कदाचित् द्वारका का अभिप्राय है। दूसरे यूनानी विद्वान् टॉल्मी (Ptolemy) ने मथुरा का

---

१. 'Heracles' अथवा 'Hercules' नाम एक वीर का यूनान की पौराणिक गाथाओं में उल्लेख मिलता है। उसने अनेक प्रबल राक्षसों और भयंकर प्राणियों से युद्ध कर उन्हें मारा और यह अपने बल के लिए लोक-विख्यात हो गया था। इसीलिये यूनानी लेखकों ने श्रीकृष्ण अथवा बलरामजी की हरकुलिस से तुलना की है।

२. एरियन के Anabais of Alexander and Indica नामक ग्रन्थ का E. J. Chinnock कृत आंग्ल अनुवाद, पृ. ४०८

३. हिग्गिन्स (higgins) का Anacalypsis नामक ग्रन्थ, खण्ड १, पृ. ३२९

देवताओं की नगरी के रूप में उल्लेख किया है। प्रोफेसर लैसन (Lassen) नामक जर्मन विद्वान की धारणा है कि भारतीय हरकुलिस के नाम से मैगस्थनीज ने श्रीकृष्ण का ही निर्देश किया है, परन्तु प्रोफेसर विल्सन आदि दूसरे पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार यूनानी लेखकों के 'हरकुलिस' शब्द के द्वारा निस्सन्देह श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलरामजी का निर्देश किया है।

भारतीय हरकुलिस के सम्बन्ध में कप्तान विल्फर्ड नाम विद्वान ने लिखा है — "सिसरो नामक यूनानी इतिहासकार के मतानुसार भारतीय हरकुलीज का नाम बैलस (Belus) था। यही श्रीकृष्ण के बड़े भाई बल थे और इन दोनों भाइयों की मथुरा में साथ-ही-साथ पूजा की जाती है; यही नहीं, वास्तव में इन दोनों को मिलाकर ही भगवान विष्णु का अवतार मानते हैं। 'बल' के विषय में यह लिखा है कि वे अत्यन्त बलिष्ठ थे और अपने पास हल-मूसल रखते थे। उन्हें बलराम भी कहते हैं। विष्णु अर्थात् हरि[४] के अवतार होने के कारण वे सचमुच हरिकुल (Heri-culas) अर्थात (Hercules) थे।[५]

एरियन ने लिखा है कि सिकन्दर ने उन नगरों तथा दूसरे राज्यों को देखा, जिन पर श्रीकृष्ण के वंशज शौरसेन नामक क्षत्रियों का आधिपत्य था। 'Monumental Christianity' नामक पुस्तक (पृष्ठ १५१-१५२) में लिखा है — "एरियन और स्ट्रैबो इन दोनों विद्वानों का यह मत है कि यमुना-नदी के तट पर बसी हुई मथुरा-नगरी में प्राचीन काल से ही भगवान श्रीकृष्ण की पूजा होती थी और अब भी होती है; किन्तु इस देवता के चिह्नों और गुणों का पाश्चात्य जगत् की पौराणिक गाथाओं में भी समावेश हो गया है।"

इन ऐतिहासिक विवरणों से पता चलता है कि ईसाई पादरियों की यह धारणा कितनी निराधार है कि श्रीकृष्ण के चरित्र तथा उनके उपदेशों की कल्पना ईसा मसीह के जीवन और उपदेशों के आधार पर हुई है। इसके विरुद्ध यह सिद्ध है कि श्रीकृष्ण ईसा मसीह से सैकड़ों वर्ष पूर्व इस लोक में पधारे थे और सिकन्दर की चढ़ाई के समय उनके उपदेश लिपिबद्ध हो चुके थे। पाश्चात्य विद्वानों में सबसे

---

४. संस्कृत में 'हरि' शब्द का अर्थ है 'उद्धारक' और कुल का अर्थ है वंश। अतः Hercules शब्द का अर्थ हुआ 'हरि के कुल में उत्पन्न हुआ पुरुष।' हिग्गिन्स का मत है कि यह शब्द यूनानी अथवा लैटिन भाषा नहीं, अपितु किसी असभ्य जाति की भाषा का है — देखिये Anacalypsis (खण्ड १, पृ. ३२६)

५. देखिये — Asiatic Researches Vol. V. p. 270

पहले सर विलियम जोन्स ने ही संस्कृत-भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने भारतवर्ष में कई वर्ष रहने के बाद लिखा था — "हमें इस बात का निश्चय है कि हमारे प्रभु (ईसा मसीह) के जन्म से बहुत पहले और कदाचित् यूनान के आदिकवि होमर (जिनका काल ईसवी सन् से ६०० वर्ष पूर्व माना जाता है) से भी पूर्व श्रीकृष्ण का नाम और उनके जीवन की रूपरेखा भारतवासियों को विदित थी।"[६]

पिछली शताब्दी का एक प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान और पुरात्त्वविशारद सर गॉडफ्रे हिग्गिन्स, यथाशक्ति इस विषय का उचित अनुसन्धान तथा गवेपणा करने के बाद इस निश्चय पर पहुँचे थे कि Brazen Age (पीतल-युग)[७] के अन्त में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। उन्होंने लिखा है — "श्रीकृष्ण ने अत्यन्त विलक्षण तथा असाधारण भक्तिपूर्ण जीवन व्यतीत किया। अत्याचारी कंस से इनका जन्म छिपाकर रखा गया था, क्योंकि उसे किसी ने यह बात कह रखी थी कि अमुक समय में उस कुल में उत्पन्न होनेवाला व्यक्ति तुम्हारे अर्थात् तुम्हारी सत्ता के नाश का कारण होगा।"

अपने ग्रन्थ 'Anacalypsis' (खण्ड १, पृ. १६०) में भी इन्होंने लिखा है — "निःसन्दिग्ध रूप से ईसवी सन् से बहुत पूर्वकाल में बने हुए अत्यन्त प्राचीन देवालयों की दीवारों पर बनी हुई मूर्तियों तथा उसी समय की हस्तलिखित पुस्तकों के देखने से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि ईसा मसीह की अपेक्षा श्रीकृष्ण का काल कहीं अधिक प्राचीन है।"

इस विद्वान ने श्रीकृष्ण की प्राचीनता को नहीं मानने वाले विद्वानों के मत का खण्डन करते हुए अपने उसी ग्रन्थ में लिखा है — "श्रीकृष्ण की प्रतिमाएँ, मन्दिर और उनके चरित्र-सम्बन्धी पुस्तकें ऐसे स्थानों में भी मिलती हैं, जहाँ किसी ईसाई का कभी प्रवेश तक नहीं हुआ। ऐसी कल्पना करना कि ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण की

---

६. देखिये Asiatic Researches, खण्ड १, पृ. २७३

७. यूरोपिय इतिहासकारों ने हमारी ही तरह सृष्टि के प्रारम्भ से कई युग माने है। आदिम युग को वे 'Stone Age' अर्थात् 'प्रस्तर-युग' कहते हैं, जिसमें मनुष्यों ने पत्थर के उपकरणों का उपयोग सीखा। इससे परवर्ती काल में ताँबे का प्रचार हुआ, जिसे 'Copper Age' अर्थात् 'ताम्र-युग' कहते हैं। इस युग के पश्चात् मनुष्यों ने पीतल का उपयोग शुरू किया और उसे ये लोग 'Brazen Age' अर्थात् 'पीतल-युग' कहते हैं। इस हिसाब से यह सृष्टि का तीसरा युग होता है। हमारे यहाँ भी श्रीकृष्ण का अवतार द्वापर के अन्त में मानते हैं, जो हमारा तीसरा युग समझा जाता है।

कथा को गढ़कर अपनी सारी मिथ्या कल्पनाओं में उसको यथास्थान जोड़ दिया होगा, उन (श्रीकृष्ण) को देवत्रयी (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), जिसे फारस देश के प्राचीन निवासियों और यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने भी माना है, में स्थान दे दिया होगा, बाइबल के Genesis (सृष्टि) नामक प्रथम अध्याय के तात्पर्य के सम्बन्ध में आधुनिक ईसाइयों ने जो अध्यात्म-विषयक अनुमान किये हैं, उनमें भी ठीक-ठीक बैठा दिया हो, निरपराध बच्चों की हत्या की (जिसका उल्लेख बाइबिल में मिलता है) प्राचीन घटना का बिल्कुल सामंजस्य कर दिया हो और यह सब करने के बाद करोड़ों मनुष्यों के हृदय में भी यह कथा प्राचीन सिद्धान्त के रूप में बैठा दी हो, जबकि वे लोग इस बात को भलीभाँति जानते रहे होंगे कि यह कथा बिल्कुल नवीन है और उन्होंने इसे पहले कभी नहीं सुना था — ऐसी कल्पना करना क्या बिल्कुल असंगत नहीं है?"

कप्तान विलफर्ड साहब ने अपनी Chronology of the Hindus (हिन्दू इतिहास का कालक्रम) नामक पुस्तक में श्रीकृष्ण और सम्राट् युधिष्ठिर के समकालीन महर्षि पराशर का समय ईसवी सन् से लगभग १७८० वर्ष पूर्व निर्धारित किया है और पाश्चात्य गणितज्ञ डेविस तथा कोलब्रुक ने उनका काल ईसवी सन् से १३६१ वर्ष पूर्व माना है। डबल्लू ब्रेनर्ड महाशय ने अपने Hindu Astronomy (हिन्दू नक्षत्रविज्ञान) नामक ग्रन्थ (पृ. ११६) में लिखा है — "जैसा पहले बतलाया जा चुका है, विद्वानों की सम्मति यह है कि महाराज युधिष्ठिर और गर्ग तथा पराशर मुनि ईसवी सन् से लगभग १२०० अथवा १३०० वर्ष पूर्व हुए थे।"

इसके अतिरिक्त बम्बई के समीप एलीफैण्टा नामक गुफा में एक बहुत ही प्राचीन मूर्ति मिली थी, जिसमें हाथ में नंगी तलवार लिये अत्याचारी राजा कंस (जिसका चरित्र ईसाई बाइबिल के राजा हेरोड के समान है) की विकराल आकृति उत्कीर्ण है और उसके चारों ओर हत्या किये हुए नन्हे-नन्हे बालक दिखलाये गये हैं। इससे ईसाई-पादरियों की उस कौशलपूर्ण कल्पना का खण्डन हो जाता है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। एलीफैण्टा की इस प्रतिमा से यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीकृष्ण ईसा से सैकड़ों वर्ष पूर्व हुए थे। इतना ही नहीं, इस मूर्ति से उनके अलौकिक जन्म, अत्याचारी कंस के भय से उनके गोकुल चले जाने, दुष्ट राजा के द्वारा श्रीकृष्ण के छोटे-छोटे भाइयों की हत्या और उस महान् उद्धारक के दिव्य जीवन की अन्य मुख्य घटनाओं के इतिहास की प्राचीनता भी प्रमाणित हो जाती है।

आस्तिक हिन्दुओं की आम मान्यता यह है कि श्रीकृष्ण का आविर्भाव द्वापर अथवा पीतल युग के अन्त में हुआ था और जिस दिन वे परमधाम को पधारे थे, उसी दिन से कलियुग का आरम्भ हुआ। इस सिद्धान्त अथवा परम्परागत मत के अनुसार श्रीकृष्णावतार ईसवी सन् से लगभग ३०६१ वर्ष पूर्व होना चाहिये। परन्तु बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि आधुनिक हिन्दू विद्वानों ने श्रीकृष्ण तथा कुरुक्षेत्र के युद्ध का ऐतिहासिक काल ईसवी सन् से १४३० वर्ष पूर्व निर्धारित किया है।[८]

श्रीकृष्ण का नाम ऋग्वेद की ऋचाओं में भी आता है, यथा — प्रथम मण्डल के ११६ वें सूक्त के २३ वें तथा १६ वें सूक्त के ७ वें मन्त्र में आता है, किन्तु पाश्चात्य विद्वान लोग यह निश्चित नहीं कर सके हैं कि ये वेदोक्त श्रीकृष्ण देवकी और वसुदेव के पुत्र हैं अथवा कोई अन्य हैं। छान्दोग्य उपनिषद् के एक मन्त्र में भी देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण ऋग्वेद के कई (आठवें मण्डल के ८५-८७ और दसवें मण्डल के ४२-४४) सूक्तों के ऋषि भी थे। इससे यह प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण वेदों का विभाग करनेवाले महर्षि वेदव्यास के समकालीन थे।

महर्षि पाणिनि के व्याकरण-सूत्रों में भी युधिष्ठिर, अर्जुन तथा वासुदेव (श्रीकृष्ण) का उल्लेख मिलता है और पाणिनि का काल ईसवी सन् से ११०० वर्ष पूर्व माना गया है। इसके अतिरिक्त महर्षि पतंजलि द्वारा रचित 'व्याकरण-महाभाष्य' में जो ईसवी सन् से कम-से-कम २०० वर्ष पूर्व लिखा गया था, हमें इस बात का निश्चित प्रमाण मिलता है कि उनके जीवन-काल में श्रीकृष्ण और कंस की कथा प्रचलित एवं प्रसिद्ध थी और उस समय वे ईश्वर रूप में पूजे जाते थे। बम्बई के सुप्रसिद्ध इतिहासकार तथा पुरातत्त्व-विशारद प्रो. भण्डारकर ने महाभाष्य में से श्रीकृष्ण के विषय में निम्नलिखित तथ्य खोज निकाले हैं —

(१) महर्षि पतंजलि के समय में कंसवध और राजा बलि के दमन की कथाएँ प्रचलित एवं प्रसिद्ध थीं।

---

८. इस सम्बन्ध में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की 'श्रीकृष्णचरित्र' नामक पुस्तक द्रष्टव्य है। इस ग्रन्थकार के मत में श्रीकृष्ण के समकालीन महाराज युधिष्ठिर महान बौद्ध सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य से १११५ वर्ष पूर्व हुए थे, जिन्होंने सिकन्दर के उत्तराधिकारी सिल्यूकस निकातर को युद्ध में हराकर यवनों को भारतवर्ष से निकाल दिया और ये ईसवी सन् से ३१५ वर्ष पूर्व भारतवर्ष के चक्रवर्ती सम्राट् हो गये। इन्होंने सिल्यूकस की पुत्री से विवाह किया था। अतः सम्राट् युधिष्ठिर का काल ईस्वी सन् से ३१५ + १११५ = १४३० वर्ष पूर्व मानना चाहिये।

(२) कंसवध-प्रसंग में वासुदेव श्रीकृष्ण द्वारा उसके मारे जाने का उल्लेख है।

(३) जिस प्रकार आज भी पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर हमारे यहाँ अभिनय दिखाये जाते हैं, उसी प्रकार पतंजलि के समय में भी उक्त कथाओं को लेकर अभिनय होते थे।

(४) श्रीकृष्ण के द्वारा कंस के वध की घटना पतंजलि के काल में भी अत्यन्त प्राचीन मानी जाती थी।[९]

ईसाइयों के भारत में पहली बार आगमन से काफी पूर्व ही इस देश में श्रीकृष्ण की ईश्वरावतार के रूप में बड़े आदर के साथ पूजा होती थी — इस बात का एक और निश्चयात्मक प्रमाण भिटारी स्तम्भ के शिलालेख में मिलता है, जो कदाचित् ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी में लिखा गया था और जिसकी प्रतिलिपि तथा अनुवाद डॉ. डब्लू. एच. मिल के द्वारा हुआ है। उक्त शिलालेख में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जो बातें लिखी गयी है, उसका अंग्रेजी में अनुवाद डॉ. मिल ने इस प्रकार किया है — "May he who is like Krishna, still obeying his mother Devaki after his foes are vanquished, he of golen rays with mercy protect this my design. -- अर्थात् "जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपने शत्रु का विनाश हो जाने के उपरान्त अपनी माता देवकी की आज्ञा का पालन किया था, वह स्वर्णिम किरणोंवाला दयापूर्वक मेरे इस आयोजन की रक्षा करे।"[१०] जर्मनी के प्रसिद्ध पुरातत्त्व-विशारद लैसन महाशय ने उपरोक्त पंक्ति का अनुवाद इस प्रकार किया है — "Like the conqueror of his enemies, Krishna encircled with golen rays, who honours Devaki, may he maintain his purpose." — अर्थात् "अपने शत्रुओं के विजेता स्वर्ण-सदृश तेज वाले श्रीकृष्ण जिस प्रकार देवकी का आदर करते थे, वे अपना प्रयोजन सिद्ध करें।"[११]

श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक पुरुष थे और उनका आविर्भाव ईसा मसीह से सैकड़ों वर्ष पूर्व हुआ था — यही सिद्ध करना इस लेख का उद्देश्य है और आशा है उपरोक्त प्रमाण ही इसका निश्चय कराने के लिए यथेष्ट होंगे।

□

---

९. Indian Antiquary, Bombay, Vol. III. (1874), p. 16

१०. Journal of the Asiatic Society of Bengal, January, 1837 p.p. 1-17

११. Indische alterthumskunde, II (1849), p. 1108 (note)

गीता का सन्देश

डॉ. मोती लाल खेतान

अमर है गीता का सन्देश ।
इस पर चलकर मुक्त हो गये, प्राणी कोटि अशेष ॥

गो स्वरूप हैं वेदोपनिषद्, अर्जुन बछड़े को निमित्त कर;
किया कृष्ण ने दोहन जिसका, सार रूप में पेश ॥ अमर. ॥

कर्म करो सब छोड़ हताशा, पर मत पालो फल की आशा;
लाभ-हानि चाहे जो आये, रहे राग-ना-द्वेष ॥ अमर. ॥

अजर अमर तुम सत्स्वरूप हो, मरता नहीं रहे घट मे जो;
पंचभूतमय काया छूटे, जीव बदलता वेश ॥ अमर. ॥

जीवन तव हो सुरभित पावन, मँहक उठे जिससे जग-कानन;
आत्मनिष्ठ निष्काम कर्म से, होगा ज्ञानोन्मेश ॥ अमर. ॥

जीना मरना निज स्वधर्म में, लगे रहो नित नियत कर्म में,
कभी पलायन मत करना तुम, जीवन जब तक शेष ॥ अमर. ॥

छोड़ जगत् के नाते नश्वर, मेरी शरण गहो तुम सत्वर ।
मुक्त करूँगा भवबन्धन से, मिट जायेंगे क्लेश ॥ अमर. ॥

इस प्रकार दे सबको आशा, दूर किया भय और निराशा;
कर बल का संचार सभी में, जगा दिया यह देश ॥ अमर. ॥

श्री चैतन्य महाप्रभु (३५)

स्वामी सारदेशानन्द

(ब्रह्मलीन लेखक की रचनाओं में मूल बँगला में लिखित उनकी 'श्रीश्री चैतन्यदेव' ग्रन्थ महाप्रभु की जीवनी पर एक प्रामाणिक रचना मानी जाती है। उसी का हिन्दी अनुवाद यहाँ धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। — सं.)

आहार के समान ही पहरावे आदि के विषय में भी चैतन्यदेव की तीक्ष्ण दृष्टि रहती थी। देह के आराम तथा भोगसुख का उन्होंने पूर्णतः वर्जन कर दिया था। इस कारण उनके स्नेहशील अन्तरङ्ग भक्तगण दुःख से अभिभूत हो जाते थे। वे लोग महाप्रभु के शरीर की बड़े यत्नपूर्वक रक्षा करना चाहते, परन्तु वे थे कि इन लोगों के अनुनय-विनय पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते थे। इस विषय में जगदानन्द की कहानी पढ़कर आप चैतन्यदेव का चरित्र विशेष रूप से समझ सकेंगे। जगदानन्द भी गदाधर के समान ही उनके बाल्यसखा तथा चिरसंगी थे। चैतन्यदेव के संन्यास-ग्रहण के बाद जगदानन्द उनके साथ आकर पुरी में निवास करने लगे। जगदानन्द भी गदाधर के समान ही नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे और गृहस्थाश्रम के साथ उनका कोई नाता न था। परन्तु गदाधर ने जिस प्रकार क्षेत्र-संन्यास लेकर निरन्तर पुरी में निवास किया, जगदानन्द ने वैसा नहीं किया। चैतन्यदेव अपनी माता तथा भक्तों का संवाद लेने के लिए कभी-कभी जगदानन्द को गौड़देश भेजा करते थे। फिर एक अन्य समय उन्होंने महाप्रभु की अनुमति लेकर काशी, वृन्दावन आदि तीर्थों की यात्रा भी की थी। जगदानन्द स्वयं त्याग-तितीक्षा व साधन-भजन में जीवन बिताते हुए भी, चैतन्यदेव की अत्यधिक कठोरता पसन्द नहीं करते थे। प्राणाधिक प्रिय महाप्रभु का कठोर संन्यास-जीवन तथा आहार-विहार में अत्यधिक संयम देखकर, दुःख से उनका हृदय विदीर्ण हो जाता था। जगदानन्द सर्वदा ही उन्हें अच्छा खिलाने-पहराने के प्रयास में लगे रहते, परन्तु आदर्श संन्यासी श्री कृष्णचैतन्य भारती बहुधा उन समस्त प्रयासों को निष्फल कर देते।

महाराज प्रतापरुद्र की इच्छानुसार श्री जगन्नाथदेव का जो मूल्यवान प्रसादी-वस्त्र नन्दोत्सव के अवसर पर चैतन्यदेव को दिया जाता था, उसे वे मस्तक से स्पर्श करके स्वीकार लेने के बावजूद स्वयं कभी उसका उपयोग नहीं करते थे। श्रीमत् परमानन्द पुरी को वे गुरुतुल्य मानते थे और सर्वदा उनकी आज्ञा पालन करने का

प्रयास करते थे। पुरीजी की इच्छानुसार वह वस्त्र नवद्वीप में शचीदेवी के पास भेज दिया जाता था। किसी-किसी का अनुमान है कि पुरीजी मूल्यवान वस्त्र देवी विष्णुप्रिया के निमित्त ही शचीदेवी को भिजवाया करते होंगे। क्योंकि वैसा मूल्यवान सुन्दर वस्त्र वृद्धाओं के लिए उपयोगी नहीं होता और सुन्दर वस्त्र बहू को देकर सास को अधिक आनन्द होता है। पहले तो गौड़ीय भक्तों के संग श्रीवास के हाथ देकर महाप्रसाद और वस्त्र की पोटली भेजी जाती थी। बाद में वे दामोदर पण्डित के हाथों भेजने लगे। फिर पढ़ने में आता है कि कभी-कभी उसे जगदानन्द के हाथों भी भेजा जाता था।

एक वर्ष चैतन्यदेव की इच्छानुसार जगदानन्द प्रसादी-वस्त्र, चन्दन की माला और महाप्रसाद लेकर नवद्वीप गये। शचीदेवी को प्रणाम करके जगदानन्द ने सारी चीजें उन्हें सौंप दीं और उनके प्राणाधिक प्रिय पुत्र का भक्तिपूर्ण साष्टांग प्रणाम तथा कुशल-समाचार आदि बताने लगे। पुत्र का समाचार पाकर शचीदेवी के आनन्द की सीमा न रही। जगदानन्द के प्रति पुत्रवत् वात्सल्य दिखाते हुए, उन्होंने कुछ दिन उनको अपने पास रखा और उनसे संन्यासी निमाई का हालचाल सुनकर अपने प्राण शीतल करती रहीं। जगदानन्द ने नवद्वीप तथा आसपास के स्थानों का भ्रमण करते हुए भक्तों के साथ मुलाकात की और सबको चैतन्यदेव द्वारा प्रेषित महाप्रसाद तथा चन्दनादि देते हुए सबके प्रति उनकी स्नेह-प्रीति ज्ञापित की। शान्तिपुर में जाकर वे जगदानन्द आचार्य से भी मिले और तदुपरान्त नित्यानन्द प्रभु से मिलने उनके निवास-स्थान पर गये। जाते समय पथ में भी विशिष्ट भक्तों से मिलकर उन्होंने सबको चैतन्यदेव की कुशलता का समाचार देकर आनन्दित किया। इस प्रकार श्रीवास आदि सभी भक्तों के साथ जगदानन्द की भेंट हुई। उनके द्वारा चैतन्यदेव की कुशलवार्ता तथा उनके द्वारा भेजे गये महाप्रसाद आदि पाकर भक्तों के आनन्द की सीमा न रही। जगदानन्द ने इसी प्रकार कुछ काल गौड़ देश में बिताया और फिर चैतन्यदेव के लिए उनकी माता का स्नेहाशीष तथा भक्तों का प्रणाम, निवेदन व उपहारादि लेकर वे पुरी लौट पड़े।

लौटते समय मार्ग में जगदानन्द ने कुछ दिन परमभक्त वैद्यकुलतिलक शिवानन्द सेन के घर में ठहर कर उनसे चैतन्यदेव के लिए वायुशान्तिकारक सुस्निग्ध चन्दानादि तैल बनवाया। उनकी इच्छानुसार उस तेल में विशेष यत्नपूर्वक एक बड़ा अद्भुत् सुगन्ध भी योग कर दिया गया। कठोर साधन-भजन, ध्यान-धारण तथा निशा-

जागरण आदि के फलस्वरूप शरीर में स्वाभाविक रूप से ही वात का प्रकोप बढ़ता है और इसके फलस्वरूप भलीभाँति नींद नहीं आती, शरीर कृश तथा दुर्बल हो जाता है। चैतन्यदेव की ऐसी अवस्था देखकर जगदानन्द के प्राणों में अतीव पीड़ा होती थी। इसीलिए वे यह सुगन्धित चन्दनादि तेल बनवाने के बाद, उसे कलसी में भरकर, एक आदमी के सिर पर रखवाकर अपने साथ ला रहे थे। उन्होंने सोचा था कि इस अतीव स्निग्ध तेल का उपयोग करने से चैतन्यदेव का कठोर साधनाजनित वायुप्रकोप शान्त हो जाएगा, शरीर स्वस्थ रहेगा और अंगकान्ति सुन्दर हो जाएगी। पुरी पहुँचकर जगदानन्द वह तेल से भरी कलसी गोविन्द के हाथों में सौंपते हुए बोले, "यह तेल प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा करके प्रभु के मस्तक पर लगाना। इससे वायुपित्त शान्त रहता है।" जगदानन्द की इच्छानुसार गोविन्द ने जब यह बात चैतन्यदेव के सामने रखी, तो वे गम्भीरता के साथ बोले, "संन्यासी के लिए तेल लगाना वर्जित है और उस पर भी सुगन्धित तेल का उपयोग तो धिक्कारणीय ही है। यह तेल तुम ले जाकर जगन्नाथजी के मन्दिर में दीप जलाने के लिए दे आओ, ताकि उनका परिश्रम भी परम सार्थक हो जाय।" अगले दिन आकर गोविन्द से पूछने पर जब जगदानन्द को पता चला कि चैतन्यदेव ने तेल को सिर पर लगाने से इन्कार कर दिया है और उसे जगन्नाथ-मन्दिर के प्रदीप में जलाने को कहा है, तो उन्हें असीम दुःख हुआ। अभिमान से हृदय भर आने के कारण उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया और वे कुछ कहे बिना ही उठकर चले गये।

जगदानन्द के भाव से गोविन्द भलीभाँति परिचित थे। उनकी मनोव्यथा देखकर गोविन्द ने कुछ दिन बाद पुनः कातर स्वर में चैतन्यदेव से निवेदन किया, "थोड़ा-सा तेल सिर पर लगा लेने से पण्डित की मनोकामना पूरी हो जाती।" उनके इस प्रकार हठ करने से महाप्रभु नाराज होकर श्लेषपूर्ण भाषा में बोले, "इतना ही क्यों? एक मालिश करनेवाला भी रख लो। इसी सुख के लिए तो मैंने संन्यास लिया है! इस प्रकार मेरा सर्वनाश करना तो तुम लोगों के लिए हँसी-खेल है। मैं जब पथ पर चलूँगा, तो मेरे शरीर से निकलता हुआ तेल का गन्ध पाकर लोग मुझे स्त्रीसंगी संन्यासी कहेंगे।"

गोविन्द को और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। अगले दिन जब जगदानन्द आये, तो चैतन्यदेव ने उन्हें सन्तुष्ट करने की आशा से स्नेहपूर्वक कहा, "जगदानन्द,

संन्यासी के लिए सुगन्धित तेल का उपयोग करना बड़ा निन्दनीय है, अतः वह मेरे काम नहीं आ सकेगा। तुम बहुत कष्ट उठाकर उसे इतनी दूर से लाये हो, इसलिए जगन्नाथ की सेवा में उसका दान कर दो। उनका प्रदीप जलने से तुम्हारा परिश्रम सार्थक हो जाएगा।'' महाप्रभु का यह सुमधुर वाक्य भी जगदानन्द के अन्तर में वाण के समान चुभ गया। चैतन्यदेव के सिर पर लगाने से उनका शरीर शीतल होगा — यही सोचकर कितने ही कष्ट उठाकर वे यह तेल लाये थे और अब वे ही कहते हैं कि सिर पर तेल लगाने से लोग उन्हें चरित्रहीन संन्यासी कहेंगे। स्नेहपूर्वक सिर पर लगाने की जगह, समझाते हैं, ''ले जाकर जगन्नाथ के प्रदीप में जलाओ।'' यह सब जगदानन्द की सहनशक्ति के परे था। वे अभिमानपूर्वक चैतन्यदेव से बोले, ''किसने कहा कि मैं आपके लिए तेल लाया हूँ?'' इसके उपरान्त उन्होंने तेल की कलसी को कमरे से बाहर लाकर क्रोधपूर्वक आंगन में पटक दिया। मिट्टी की कलसी टूटकर चकनाचूर हो गयी और उसका तेल चारों ओर बह निकला। जगदानन्द आँसू बहाते हुए उस तेल के ऊपर से होकर तेजी से चले गये। अपनी कुटिया में पहुँचकर उन्होंने दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया और स्नान-आहार छोड़कर उसी में पड़े रहे।

अगले दिन जगदानन्द का संवाद भक्तों के मुख से चैतन्यदेव तक जा पहुँचा और वे इस पर अत्यन्त दुखी हुए। उन्हें शान्त और सन्तुष्ट करने के लिए महाप्रभु स्वयं ही उनके निवास-स्थान पर जा पहुँचे। उनके अनेक गुहार लगाने पर भी, न तो जगदानन्द ने कोई उत्तर दिया और न ही द्वार खोला। तब उन्हें प्रसन्न करने का और कोई उपाय न देख चैतन्यदेव ने कहा, ''जगदानन्द, आज मैं तुम्हारे ही यहाँ भिक्षा करूँगा। अभी मैं श्री जगन्नाथ का दर्शन तथा समुद्रस्नान को जा रहा हूँ। यथाशीघ्र भिक्षा की व्यवस्था करो।'' साधु का क्रोध जल के दाग के समान क्षणिक होता है। जगदानन्द का मन हर्षित हो उठा। वे अविलम्ब द्वार खोलकर बाहर आये और महाप्रभु के चरणों में प्रणत हो गये। चैतन्यदेव ने उन्हें उठाकर प्रेमालिंगन दिया तथा अपनी सुमधुर वाणी तथा व्यवहार से उनके चित्त को मोहित कर लिया। जगदानन्द ने हृष्टचित्त से हाथ जोड़कर उनसे शीघ्रतापूर्वक स्नान कर आने का अनुरोध किया और स्वयं भी स्नान करके रसोई बनाने में जुट गये। आनन्द से अभिभूत होकर उस दिन जगदानन्द ने विभिन्न प्रकार की चीजें तैयार की और यथासमय जब चैतन्यदेव भिक्षा के लिए आए, तो उन्हें अपनी इच्छानुसार परोसकर

खिलाने लगे। उस दिन चैतन्यदेव ने खाते समय भय के कारण कोई उज्र-आपत्ति नहीं दिखाई, जगदानन्द की आकांक्षा के अनुसार उन्हें सब कुछ ग्रहण करना पड़ा। परमप्रिय प्रभु के लिए अपने हाथों पका और खिलाकर जगदानन्द का अन्तर उल्लास से परिपूर्ण हो उठा। तेल की बात वे बिल्कुल ही भूल गये और उस विषय में उन्हें बिल्कुल भी दुःख न रहा। स्वयं भिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् चैतन्यदेव ने उनसे भी भोजन कर लेने का अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने कहा कि पकाने में सहायता करनेवाले सेवक गोविन्द को प्रसाद देने के बाद ही वे स्वयं आहार ग्रहण करेंगे। उन्हें खिलाए बिना चैतन्यदेव की अपनी कुटिया में लौटने की इच्छा न थी, परन्तु जगदानन्द ने उन्हें उतनी देर प्रतीक्षा करने से मना किया और यथाशीघ्र कुटिया में जाकर विश्राम करने का अनुरोध किया। उनका अनुरोध टालने में असमर्थ होकर चैतन्यदेव अपनी कुटिया में लौट तो आये, परन्तु साथ ही सेवक गोविन्द को कह आये कि वह अपनी आँखों से पण्डित का खाना देखकर उन्हें आकर सूचित करें।

सबको भरपेट प्रसाद खिलाने के बाद जगदानन्द स्वयं प्रसाद ग्रहण करने को बैठे और बैठते ही गोविन्द को बलपूर्वक प्रभु की कुटिया में जाकर उनकी पदसेवा करने को भेज दिया। जगदानन्द को अपने बारे में कोई चिन्ता न थी, वे प्रभु के सुख के लिए ही व्यग्र रहा करते थे। चैतन्यदेव की कुटिया में जाकर गोविन्द ने उन्हें सब कुछ बताया। जगदानन्द प्रसाद पाने को बैठ गये हैं, यह सुनकर महाप्रभु निश्चिन्त हुए। चैतन्यदेव के प्रति जगदानन्द की असीम भक्ति देखकर भक्तगण विस्मित हो गये।

चैतन्यदेव की सुख-भोग में अनिच्छा और जगदानन्द का उनकी सेवा में आग्रह — दोनों ही बड़ी अद्भुत् बातें थीं। चैतन्यदेव के जीवन के अन्तिम दिनों में, दिन-रात भगवद्भाव में विभोर रहने से उनके आहार-निद्रा में व्यतिक्रम होने लगा और इसके फलस्वरूप उनका शरीर अत्यन्त क्षीण तथा दुर्बल हो गया। तब जगदानन्द ने अत्यन्त चिन्तित होकर उस पवित्र देह को आराम पहुँचाने के लिए असीम प्रयास किया था। चैतन्यदेव उन दिनों अपनी कुटिया की जमीन पर केले का 'शरला' बिछाकर सोते थे। 'चैतन्य-चरितामृत' ग्रन्थ में यह 'शरला' शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसका निर्णय कर पाना बड़ा कठिन है। किसी-किसी के मतानुसार केले के पेड़ के भीतर स्थित महीन पत्ते को 'शरला' कहते हैं, जो सीधे डण्डे के समान निकलता है। इस प्रकार सुशीतल व कोमल पत्तों पर सोने से भगवद्-विरह

से उत्तप्त शरीर को आराम मिलता है। फिर किन्हीं अन्य लोगों के मतानुसार कदली वृक्ष के सूखे छिलके को 'शरला' कहते हैं। और प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों के वल्कल-वस्त्रों के समान ही चैतन्यदेव भी उनका सोने के लिए उपयोग करते थे। 'शरला' उन दिनों चाहे जिस भी वस्तु को भी क्यों न कहते रहे हों, पर वह सुखकर शय्या तो निश्चय ही नहीं थी। उस पर सोने से महाप्रभु के क्षीण शरीर को बड़ा कष्ट होता होगा, यह सोचकर जगदानन्द बड़े ही दुखी थे। क्रमशः जब चैतन्यदेव की काया और भी कृश हो गयी, तब तो उनसे रहा नहीं गया। कुछ व्यवस्था करने को वे अधीर हो उठे। नये महीन कपड़े को उन्होंने गैरिक रंग में रँगवाने के बाद, उसमें सेमल की उत्कृष्ट रूई भरवाकर, उन्होंने गद्दा और तकिया बनवाया और उसे गोविन्द के हाथों में देते हुए बोले, "शयन के समय इसे बिछा देना।" केवल गोविन्द के द्वारा अपनी मनोकामना पूरी होने की उम्मीद जगदानन्द को नहीं थी, अतः चैतन्यदेव से उस गद्दे तथा तकिये का उपयोग कराने के लिए उन्होंने स्वरूप दामोदर से भी बड़ा अनुनय-विनय किया। पण्डित के आदेशानुसार गोविन्द ने गद्दा और तकिया लगा दिया था। यथासमय शयन के लिए आने पर गद्दा-तकिया देखकर चैतन्यदेव को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने व्यग्र होकर गोविन्द से पूछा, "यह सब शय्या आदि कहाँ से आया? और यहीं पर क्यों लगाया गया है?" गोविन्द ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "कठोर भूमि पर शयन करने से आपके कोमल शरीर को कष्ट होता है, इसीलिए जगदानन्द पण्डित आपके सोने के लिए यह नरम बिछौना बनवाकर दे गये हैं।" जगदानन्द का नाम सुनकर चैतन्यदेव ने विशेष कुछ नहीं कहा कि कहीं पुनः कोई काण्ड न खड़ा हो जाय। धीरे-धीरे उन्होंने बिस्तर को खिसकाकर एक किनारे कर दिया और नित्य के समान जमीन पर बिछे उस केले के शरले पर ही सो गये। चैतन्यदेव के अन्तर का भाव और स्वभाव दामोदर स्वरूप को भलीभाँति विदित था, तथापि जगदानन्द के अनुरोध की रक्षा के लिए वे महाप्रभु से बोले, "पण्डित इतना कष्ट उठाकर इसे ले आये है! इस बिस्तर पर एक दिन भी न शयन करने से उनके मन में अतीव दुःख होगा।" स्वरूप की बात सुनकर चैतन्यदेव ने दुःखपूर्वक कहा, "एक खाट भी तो ला सकते थे! क्या कहूँ, जगदानन्द मुझसे विषय-भोग करवाना चाहता है! मैं संन्यासी हूँ, भूमि ही मेरा बिस्तर है, मेरा मुण्डित मस्तक ही मेरे लिए खाट, गद्दा, तकिया आदि सब कुछ है।" दामोदर

स्वरूप कुछ और कहने का साहस नहीं जुटा सके।

अगले दिन गोविन्द के मुख से यह सुनकर कि चैतन्यदेव ने गद्दे व तकिये का उपयोग नहीं किया और न ही करनेवाले हैं, पण्डित का हृदय दुःख तथा अभिमान से परिपूर्ण हो उठा। समाधान का और कोई उपाय न देख जगदानन्द ने पुनः स्वरूप को जा पकड़ा। चैतन्यदेव की शारीरिक अवस्था पर स्वरूप भी बड़े चिन्तित थे। उन्होंने मन-ही-मन एक उपाय ढूँढ़ निकाला। इसे कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने बहुत से केले के सूखे पत्ते एकत्र किए, उन्हें चीरकर उनके खूब पतले-पतले रेशे बना लिए और चैतन्यदेव के एक पुराने गेरुए कपड़े का खोल बनाकर, उसी में उन्हें भर दिया। इस प्रकार केले के सूखे पत्तों से ही उनका ओढ़ना-बिछौना तैयार हुआ। दामोदर स्वरूप के विशेष आग्रह पर तब से चैतन्यदेव उसी पर सोया करते थे। भक्तगण इस व्यवस्था पर किंचित् आनन्दित हुए, परन्तु जगदानन्द के अन्तर का खेद दूर नहीं हुआ।

चैतन्यदेव के प्रति जगदानन्द की प्रीति तथा निष्ठा प्रदर्शित करनेवाली और भी एक घटना है। अपने काशी-वृन्दावन यात्रा के समय महाप्रभु बलभद्र भट्टाचार्य तथा उनके सेवक ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी को साथ नहीं ले गये थे। जगदानन्द का विशेष आग्रह होने पर भी उन्हें संग जाने का सुयोग नहीं हुआ था। अतः बाद में उन सब तीर्थों की यात्रा करने के लिए उन्होंने चैतन्यदेव से अनुमति की प्रार्थना की। परन्तु यह सोचकर कि सरल-स्वभाव पण्डित के लिए उन दुर्गम दूर-दराज के प्रदेशों की यात्रा करना संकट से परिपूर्ण सिद्ध होगा, चैतन्यदेव ने पहले तो उन्हें अनुमति नहीं दी। परन्तु बड़ा प्रयास करने के बाद आखिरकार जगदानन्द अनुमति पाने में सफल हो गये। चैतन्यदेव ने उन्हें विशेष रूप से सावधान करते हुए, पथ-घाट आदि के बारे में विविध प्रकार की जानकारियाँ देकर, आशीर्वाद के साथ उन्हें विदाई दी। जगदानन्द पुरी से चलकर मार्ग में अनेक तीर्थों का दर्शन करते हुए अन्ततोगत्वा व्रजमण्डल में जा पहुँचे। उन दिनों सनातन वहीं निवास कर रहे थे। दोनों ही एक दूसरे से मिलकर अतीव हर्षित हुए और चैतन्यदेव के बारे में चर्चा करते हुए परम आनन्द में दिन बिताने लगे।

सनातन माधुकरी के द्वारा ही अपना जीवननिर्वाह करते थे। एक दिन जगदानन्द ने उन्हें भिक्षा के लिए निमन्त्रित किया। सनातन ने यद्यपि संसार त्यागकर विधिपूर्वक संन्यास या गैरिक वस्त्र ग्रहण नहीं किया था, तथापि वे एक सच्चे संन्यासी का जीवन बिताते थे। उनकी त्याग, तपस्या तथा तितीक्षा को देखकर ऐसा लगता था कि ये

प्रकृष्ट विद्वत् संन्यासी[1] हैं।

उन दिनों उस अंचल में मुकुन्ददेव सरस्वती नाम के एक संन्यासी निवास करते थे। उन्होंने सन्तुष्ट होकर स्वयं ही सनातन को एक गैरिक वस्त्र प्रदान किया था, उसी को सिर पर बाँधकर वे जगदानन्द के यहाँ भिक्षा लेने गये। सनातन ने भिन्न सम्प्रदाय के संन्यासी द्वारा प्रदत्त गैरिक वस्त्र सिर पर बाँध रखा है, यह देख पण्डित के तन-बदन में आग लग गयी। सनातन की तीव्र भर्तसना करते हुए, भात की हण्डी उठाकर वे उन्हें मारने दौड़े। सनातन ने सलज्ज भाव से हाथ जोड़कर पण्डित से क्षमा माँगते हुए कहा, "मुझे आपसे ऐसे ही व्यवहार की आशा थी। आपकी कृपा से आज मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ।"

हमें तो ऐसा लगता है कि सनातन को भिक्षा पाने में सुविधा हो, इसीलिए उनके प्रति स्नेहवश संन्यासी मुकुन्ददेव ने उन्हें गैरिक-वस्त्र प्रदान किया था। क्योंकि सफेद वस्त्र होने पर लोग आटा, दाल आदि कच्चा सीधा देते हैं और गैरिकधारी को भिक्षा में रोटी, भात आदि पका भोजन मिलता है। इस कारण ब्रह्मचारी, गोसाईं तथा अन्य श्वेतवस्त्रधारी साधुगण सिर पर गैरिक वस्त्र बाँधकर संन्यासियों के समान ही भिक्षा में पका हुआ भोजन माँगते हैं। यह प्रथा अब भी उत्तर भारत में प्रचलित हैं। परन्तु स्वेच्छापूर्वक अपने वस्त्र को गेरू से रंगकर पहनना या सिर पर बाँधना नियम-विरुद्ध है; इसे किसी गैरिकधारी सम्प्रदाय के साधु से ही प्राप्त करने का रिवाज है। संन्यासी ने निःसन्देह, सनातन को योग्यपात्र समझकर और पकी हुई माधुकरी पाने में सुविधा हो, इसीलिए उन्हें गैरिक वस्त्र प्रदान किया था। परन्तु इससे क्या! जिसके पास से गैरिक वस्त्र लिया जाता है, उसके साथ ही एक तरह से उन्हें सम्प्रदाय-गुरु मानना भी हो जाता है और वह गैरिक देनेवाले के सम्प्रदाय का और उन्हीं के शिष्य के रूप में परिचित होता है। अतः चैतन्यदेव के प्रिय अन्तरंग के सिर पर किसी अन्य का गेरुआ देखकर जगदानन्द का क्रोध स्वाभाविक ही था। इसके अतिरिक्त गैरिक वस्त्र के ऊपर भी पण्डित का भीषण आक्रोश था, क्योंकि इसी सर्वनाशकारी गेरुए रंग के कारण उनके सोने की मूर्ति के समान प्राणप्रिय देवता आज धूल में लोट रहे थे। (क्रमशः)

□

---

१. संन्यास दो प्रकार का होता है – विद्वत् और विविदिषा। जो लोग ज्ञानलाभ के बाद संसार-त्याग करते हैं, वे विद्वत् संन्यासी हैं और जो लोग ज्ञानप्राप्ति के उद्देश्य से संन्यास लेते हैं, उन्हें विविदिषा संन्यासी कहते हैं।

रामकृष्ण मिशन की प्रारम्भिक बैठकें

(गतांक से आगे)

चौदहवाँ सत्र (२५ जुलाई, १८९७)

स्वामी ब्रह्मानन्द सभापति थे। स्वामी त्रिगुणातीत ने गीता के सातवें अध्याय से कुछ श्लोकों का पाठ किया। गिरीश चन्द्र घोष ने श्रीरामकृष्ण-विषयक अपने संस्मरण सुनाये जो निम्न प्रकार है —

"श्रीरामकृष्ण के चरणों में शरणागति के तीन या चार दिन बाद उन्होंने मुझसे पूछा, 'तुम्हें क्या मिला?' मैंने उत्तर दिया, 'मुझे निर्भयता की प्राप्ति हुई है।' सुनकर वे हँस दिये। उनके चरणों में शरणागति का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि स्वयं 'उनका' वर्णन करना ही दुष्कर है। श्रीरामकृष्ण के साथ इतने सुदीर्घ सम्बन्ध के उपरान्त भी मैं निश्चितता के साथ नहीं कह सकता कि उनका वास्तविक स्वरूप क्या है या उनके विशेष गुण क्या हैं? विभिन्न अवसरों पर मैंने उन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त होते देखा है। पानिहाटी[1] के महोत्सव के दौरान मुझे ठाकुर के अनेक भावों का दर्शन मिला। तभी से मैं समझ नहीं पाता कि वे पुरुष हैं या प्रकृति। उन्होंने बताया था कि वे स्वयं भी नहीं जानते कि वे पुरुष हैं या प्रकृति।

"जहाँ वे एक माता की भाँति मुझे वात्सल्यपूर्वक खिलाते-पिलाते थे; वहीं एक पिता की तरह वे एक ज्ञानी तथा आदर्श भक्त भी थे। इन्हीं सब कारणों से उनका वर्णन करना कठिन है। वस्तुतः उनके विषय में मन के द्वारा कोई विशिष्ट धारणा या कल्पना कर पाना ही दुष्कर है। तथापि व्यक्तिगत रूप से मेरा दृढ़ विश्वास है कि वे शरणागत-वत्सल अभयदाता हैं।

"शास्त्र ईश्वर के विषय में क्या कहते हैं इसका मुझे ज्ञान नहीं, परन्तु मेरा विश्वास है कि चूँकि श्रीरामकृष्ण मुझसे उतना ही प्रेम करते थे जितना मैं स्वयं से करता हूँ, इस कारण वे ईश्वर ही थे। उनका मेरे प्रति ऐसा ही प्रेम था।

"मेरा कभी कोई सच्चा मित्र नहीं था; परन्तु वे मेरे सच्चे मित्र हैं, क्योंकि उन्होंने मेरे दुर्गुणों को सद्गुणों में रूपान्तरित कर दिया। कभी कभी तो मुझे लगता कि मेरा स्वयं के प्रति जितना प्रेम है, वे उससे भी अधिक मुझसे प्रेम करते थे।

---

१. पानिहाटी कलकत्ते के निकट स्थित चैतन्यदेव के जीवन से जुड़ा एक तीर्थ है। श्रीरामकृष्ण वहाँ के वार्षिक समारोह में भाग लेने को उपस्थित हुआ करते थे।

"मुझे उनके और भी एक गुण का परिचय मिला है। जिस किसी ने अपने दुर्गुणों को जानकर उन्हें स्वीकार किया, उसी पर उन्होंने कृपा की और (अपनी कृपादृष्टि से) उसे ऊपर उठाया। उनके सम्पर्क में आने पर घोर पापी का हृदय भी मानो पारसमणि का स्पर्श पाकर स्वर्ण में परिणत हो जाता था। उन्होंने ऐसे पापियों को भी शरण प्रदान किया, जो सभय तथा विनम्र थे।

"अनेक अवसरों पर उनकी वाणी का अर्थ समझना कठिन था। उदाहरण के लिये कभी तो वे मार्ग में खड़ी किसी वारांगना को माँ-काली कहकर सम्बोधित करते, तो कभी माँ की काले पत्थर से निर्मित प्रतिमा को स्वर्णवर्णी काली कहते। परन्तु, यह बात उनके सभी अन्तरंग भक्त जानते हैं कि उनके कृपाकटाक्ष मात्र से सब कुछ स्वर्णमय हो सकता है।

"जब मैंने 'विल्वमंगल' नाटक लिखा, तो उनके अनेक भक्तों ने मुझसे तरह तरह के प्रश्न किये। मैंने उन्हें बताया कि नाट्यलेखन की कला भी मैंने श्रीरामकृष्ण से ही सीखी है। नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) का कहना है कि उन्होंने ठाकुर से विज्ञान सीखा तथा महेन्द्रनाथ ('म') बताते हैं कि ठाकुर ने उन्हें अध्यापन-कला की शिक्षा दी। ऐसी स्थिति में श्रीरामकृष्ण के विविध भावों का वर्णन भला कैसे सम्भव है? कोई भला कैसे उनकी इति कर सकता है? मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जो कोई भी श्रीरामकृष्ण की शरण में आयेगा, उसे शान्ति मिलेगी। इस बात पर कोई संशय नहीं किया जा सकता। वे भक्तों की समस्त आध्यात्मिक मनोकामनाएँ पूरी कर देते हैं।

"तो फिर ये श्रीरामकृष्ण कौन हैं? वे अवतार हैं या नहीं — मैं कह नहीं सकता। परन्तु यदि ईश्वरीय अवतार का यही कार्य है कि वह सब पर कृपादृष्टि रखें और शरणागतों को मुक्ति तथा आश्रय प्रदान करें — तो फिर मैं कह सकता हूँ कि श्रीरामकृष्ण निश्चित रूप से ईश्वरावतार हैं।

"श्रीरामकृष्ण अनन्त शान्ति तथा सुख के दाता हैं। मैं उनका किस प्रकार चिन्तन करूँगा? उनकी पूजा समस्त औपचारिक अनुष्ठानों के परे है। उन्होंने मुझे मिठाइयाँ खिलायीं; मैंने जब उनके प्रति अपशब्द कहे, तब भी उन्होंने मुझे गले से लगाया है; उनके नाम का आश्रय लेकर उन्हें पुकारना ही उनकी एकमात्र पूजा है।

"आज प्रातःकाल राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्दजी) ने मुझे एक घण्टे का व्याख्यान देने को कहा। इन लोगों (ठाकुर के शिष्यों) की शरण लेकर ही मैंने यह

व्याख्यान देने का दुस्साहस किया है। यदि मैं उन पर आश्रित हूँ, तो फिर मुझे कोई भय नहीं। उपसंहार के रूप में मैं केवल इतना ही कहूँगा कि श्रीरामकृष्ण कृपा की प्रतिमूर्ति तथा हमारे हृदय के स्नेहमय शासक हैं। यदि हम उन्हें पुकारे, तो हमारा अंतःकरण अज्ञान तथा मोह से मुक्त हो जायगा।

(इसके उपरान्त प्रश्नोत्तर हुए। सम्भवतः स्वयं गिरीशबाबू ने ही अथवा बैठक में उपस्थित ठाकुर के किसी शिष्य ने उत्तर दिये थे। — सं.)

प्रश्न — 'भगवान को अपना बकलमा दे देने' से क्या तात्पर्य है?

उत्तर — इसका अर्थ है ईश्वर को ही अपनी सारी जिम्मेदारियाँ सौप देना। भक्त अपनी सारी क्षमताएँ तथा उत्तरदायित्व ईश्वर को समर्पित कर देता है।

प्रश्न — ईश्वर कब कृपा करते है? क्या इसका कोई विशेष कारण है?

उत्तर — नहीं, यह पूर्णतः अहैतुक है।

प्रश्न — क्या पूर्वजन्म के पुण्यकर्मों के फलस्वरूप ईश्वर की कृपा होती है?

उत्तर — एक तरह से कहा जाय तो, 'हाँ', परन्तु अन्तिम सत्य तो यह है कि ईश्वर की कृपा उन्हीं की इच्छा से होती है। (ईश्वर जब चाहें, तभी कृपा कर सकते हैं।)

प्रश्न — श्रीरामकृष्ण गृही थे या संन्यासी?

उत्तर — ठाकुर पूर्णतः अनासक्त होकर व्यवहार करते थे। जीव माया के अधीन हैं परन्तु माया ईश्वर के अधीन है। ईश्वर विभिन्न युगों में उन उन कालों की धार्मिक आवश्यकताओं के अनुरूप अवतार लेते हैं।

प्रश्न — पुण्य क्या है और पाप क्या है?

उत्तर — ध्यान, तप आदि मनुष्य को मुक्ति की ओर ले जानेवाले कर्म पुण्य हैं। पापकर्म वे हैं, जो मनुष्य को बन्धन में डालते हैं। कर्म अनादि हैं। कुछ कर्म मुक्त करते हैं, तो कुछ की बन्धन की सृष्टि करते हैं।

प्रश्न — मनुष्य को कर्म में कौन प्रवृत्त करता है?

उत्तर — पूर्वजन्मों के संस्कार। चूँकि कर्म अनादि काल से निरन्तर चला आ रहा है, अतः यह जान पाना कठिन है कि हमारे भीतर संस्कार क्यों जागृत होते हैं। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है कि कर्म का उद्गम क्या है तथा कर्मफल की प्राप्ति कैसे होती है, तथापि यह प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है कि कर्म करना अनिवार्य है और इसका फल भी भोगना पड़ता है। अतः हमारे लिए यह जानना परम

आवश्यक है कि कर्मजनित बन्धन से मुक्त कैसे हुआ जाय।

प्रश्न — हम अपने कर्मों से किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं?

उत्तर — साधना, विचार, ध्यान तथा सत्संग के द्वारा मन तथा अंतःकरण को ईश्वरोन्मुखी करके।

प्रश्न — मृत्यु क्या है?

उत्तर — यह नया शरीर ग्रहण करने की प्रक्रिया है।

प्रश्न — मृत्यु से भय क्यों लगता है?

उत्तर — शास्त्रों का कहना है कि अपने पिछले जन्मों में हुए मृत्यु के भयानक अनुभवों की सुदृढ़ स्मृति के कारण ही हमें मृत्यु से भय लगता है।

प्रश्न — दुःखों से मुक्ति के क्या उपाय हैं?

उत्तर — साधन-भजन और (ईश्वरोपलब्धि के द्वारा) मुक्ति। सामान्यतः सांसारिक प्रवृत्तिवाले लोग ऐसा करने में समर्थ नहीं हैं। परन्तु समुचित एकाग्रता तथा भक्तिपूर्वक भगवन्नाम का जप करके दुःखों से मुक्ति पायी जा सकती है। भले ही आपको इसका बोध न हो, परन्तु ईश्वर का नामजप क्रमशः आपको मुक्ति की ओर ले जायेगा।

इसके उपरान्त सभा विसर्जित कर दी गयी।

सतरहवीं बैठक (१५ अगस्त, १८९७)

स्वामी ब्रह्मानन्द की अध्यक्षता में गिरीश चन्द्र घोष ने "ईश्वर क्या है" विषय पर व्याख्यान दिया। अन्य बातों के अतिरिक्त उन्होंने बताया —

"एक बार मैंने श्रीरामकृष्ण के समक्ष दिव्य-दर्शन की इच्छा प्रकट की। परन्तु उन्होंने कहा, 'ऐसे दर्शनों की इच्छा मत करो, क्योंकि उनके प्राप्त होने पर भी तुम्हें अपनी दृष्टि पर विश्वास नहीं होगा।' बाद में मुझे उनके इस कथन का महत्व विदित हुआ। क्योंकि यह निश्चित था कि यदि मैं अपनी आँखों से भी किसी को अपने समक्ष हाथों पर कोई पर्वत उठाये देखता, तो भी मैं उसे कोई जादू या इन्द्रजाल ही मानता।

"श्रीरामकृष्ण का जीवन तथा उपदेश इस युग के लिये सर्वाधिक उपयुक्त है। ईश्वर में अल्प विश्वास या पूर्ण अविश्वास रखनेवाले लोग भी उनसे मिलने जाते थे। श्रीरामकृष्ण उनके प्रति स्नेह तथा सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार करते, उनसे जलपान

करने का आग्रह करते और उनके साथ धर्मचर्चा करते। उनकी उपस्थिति में, ईश्वर के अस्तित्व के विषय में शंका या वाद-विवाद करने की भावना किसी के मन में आती ही नहीं थी। वे सबको ईश्वर की 'वास्तविकता' का अनुभव करा देते थे।

"अधिकांश लोग इस बात से भी अत्यन्त प्रभावित थे कि वे कभी किसी से धन या उपहार की अपेक्षा नहीं रखते थे। उनका जीवन निःसन्दिग्ध रूप से पवित्र था। उनका दृष्टिकोण उदार तथा सार्वभौमिक था। वे कहते, 'सभी मार्ग सत्य हैं। तुम्हें ईश्वर की जो भी अभिव्यक्ति प्रिय हो, उसी का अनुसरण करो।' जिस किसी ने भी उन्हें समाधि में देखा है, वह निश्चित रूप से जानता हैं कि ईश्वर सत्य और नित्य विद्यमान हैं।

"उनके सान्निध्य में कभी व्यर्थ के वाद-विवाद नहीं उठते थे। उन दिनों कितना भी प्रयत्न करने पर मैं स्वयं की नास्तिक के रूप में कल्पना नहीं कर पाता था। यद्यपि मैं सदैव संशय तथा अविश्वास के बीच की अवस्था में रहा करता था, तथापि अन्ततः उनकी कृपा से मैंने पाया कि मैं सारी बातों पर विश्वास करने लगा हूँ।

"पहले तो मैं श्रद्धा-विश्वास को एक दुर्बल चित्त का लक्षण समझा करता था, परन्तु उनके दर्शन के उपरान्त मुझे इसकी महान शक्ति का बोध हुआ। उनके दर्शन के द्वारा मैं अपने समस्त संशयों से मुक्त हो गया। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था, 'अपने अन्तर में जिसका तुम्हें अनुभव तथा दृढ़ निश्चय हो, उसी के अनुसार कार्य करो।' अपनी वाणी से उन्होंने मुझमें विश्वास उत्पन्न किया और मेरे शंकालु, अज्ञेयवादी व भोगवादी प्रवृत्तियों का आध्यात्मिक रूपान्तरण हो गया। भला कैसे मैं अन्य किस कारण को अपने विश्वास के लिये श्रेय प्रदान करूँ? ईश्वर की तर्क तथा विचार के द्वारा अनुभूति नहीं की जा सकती। केवल एक दीपक के द्वारा मनुष्य को सूर्य का दर्शन करने में कोई सहायता नहीं प्राप्त होगी। साधक को अनुभूतिसम्पन्न ब्रह्मज्ञ गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

"कभी-न-कभी हमारा मन ईश्वर की ओर अभिमुख होता ही है, यदि सुख के क्षणों में न हो, तो दुःख-कष्ट के या मृत्यु के समय होता है। यदि हम ईश्वर को जानना चाहते हैं, तो हमारे पास ईश्वर की ओर जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है; ईश्वर के पास अर्थात् ईश्वरीय-ज्ञान-सम्पन्न महापुरुष के पास — ऐसे सन्त के पास, जिनमें ईश्वर अधिकतम परिमाण में अभिव्यक्त हो रहे हैं। ऐसे सन्त कहाँ मिलेंगे? यदि साधक सच्चा हैं और ईश्वर के लिये तीव्र रूप से व्याकुलता का अनुभव

करता है, तो ईश्वर ही भक्त के लिये ऐसे सन्त से मिला देते हैं। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, 'जो भी, ईश्वर के लिये वास्तव में व्याकुल है, उसे गुरु अवश्य मिलेंगे।'

"ईश्वर की अनुभूति के लिये सर्वप्रथम हमें विनम्र बनना होगा। हममें से अधिकांश में कूट-कूट कर अहंकार भरा हुआ है और हम सदा ही सोचा करते हैं — 'मुझे भला गुरु की क्या आवश्यकता?' परन्तु श्रीरामकृष्ण के सत्संग से ऐसा अहंकार चला जाता था। वे प्रणाम करने में सदैव आगे रहते और हाथ जोड़कर नमस्कार करते। सद्गुरु की शरण लेना ही ईश्वरप्राप्ति का एकमात्र साधन है। इस समय भले ही आपमें विश्वास का अभाव हो, परन्तु गुरुकृपा से आप सभी रूपान्तरित हो सकते हैं।"

सभा में उपस्थित एक श्रोता ने गिरीश से निम्नलिखित प्रश्न किये —

प्रश्न : 'भाव के घर में चोरी करना' — इस कथन से श्रीरामकृष्ण का क्या तात्पर्य था?

उत्तर : मुझे तो ऐसा लगता है कि श्रीरामकृष्ण को किसी एक भाव से समझकर उन्हें पूरी तौर से समझ लेने का भी दावा करना अनुचित होगा; अतः मुझे जो कुछ समझने का सौभाग्य मिला है, वही मैं बताने का प्रयास करूँगा। आपने जो वाक्य उद्धृत किया है, उसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपनी स्वयं की भक्ति-भावना के अनुरूप ही ईश्वर का ध्यान तथा पूजन करना चाहिये। एक बार श्रीरामकृष्ण ने स्वामी योगानन्द से पूछा, "बताओ तो, तुम मुझे क्या समझते हो?" योगानन्द ने कहा, "आप न तो (पूरी तौर से) गृहस्थ हैं और न ही संन्यासी।" श्रीरामकृष्ण इस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और आह्लादित होकर बोले, "तुमने कितनी असाधारण बात कही?"

प्रश्न : श्रीरामकृष्ण के अवतारत्व की मान्यता पर आपका क्या विचार है?

उत्तर : किसी अन्य व्यक्ति में उनके समान देवत्व की कल्पना करना ही मेरे लिये असम्भव है। एक बार जब मैं सीधे एक गणिका के घर से निकलकर उनसे मिलने जा पहुँचा था, तो भी उन्होंने मुझे आदरपूर्वक बैठने को आसन दिया। एक अन्य अवसर पर वे मेरे उस तुच्छ नाट्यशाला में भी मिष्ठान्न लेकर मुझसे मिलने आये थे और वह भी मेरे लिये ! मुझे जीवन में कभी किसी से भी इतना प्रेम नहीं मिला। मेरे लिये तो श्रीरामकृष्ण भगवान हैं, ईश्वर के अवतार हैं। उनके एक ही शब्द से मेरे जीवन भर के संशय दूर हो गये। आज भी यदि मैं

अनुभव करता हूँ कि मेरे मन में संशय उठ रहे हैं, तो मैं उन्हीं का स्मरण करता हूँ और तत्काल सारे संशय चले जाते हैं और दुबारा उनका उदय नहीं होता। मुझे तो लगता है कि उन्हें जानना, उनसे प्रेम करना तथा उनका पूजन करना कठिन नहीं हैं, बल्कि निश्चित रूप से उनका विस्मरण करना ही अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है।

उन्नीसवीं बैठक (२६ अगस्त, १८९७)

स्वामी योगानन्द की अध्यक्षता में, गिरीश चन्द्र घोष ने "पुरुषार्थ" विषय पर व्याख्यान दिया।

"प्रायः हमारे मन में यह प्रश्न उठा करता है कि ईश्वरीय कृपा सत्य है या व्यक्तिगत पुरुषार्थ? श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि दोनों ही प्रभावी और दोनों ही सत्य हैं। श्रीरामकृष्ण से मेरी पहली भेंट दीनानाथ बोस के निवास पर हुई। रात का समय था। मैंने विस्मयपूर्वक देखा — ठाकुर पूछ रहे थे, 'क्या अभी संध्या नहीं हुई? क्या अभी भी दिन है?' इन उक्तियों पर मेरी प्रथम प्रतिक्रिया अत्यन्त शंकायुक्त थी। मुझे उनका दिव्यभाव एक दिखावा जैसा प्रतीत हुआ और इन्हीं भावों के साथ मैं घर वापस लौटा। मुझे तब इस बात की कल्पना तक नहीं थी कि ईश्वर के प्रति प्रबल भाव से प्रेम करनेवाला व्यक्ति इतना अन्तर्मुखी हो सकता है कि सम्भव है उसे दिन या रात का भान ही न रहें।"

एक श्रोता : क्या श्रीरामकृष्ण अपने पास आनेवाले हर व्यक्ति पर समान भाव से कृपा करते थे?

गिरीश : मुझे तो ऐसा ही लगता है। कभी कभी उनका जो आचरण हमें निष्ठुर या कठोर प्रतीत होता था, वही बाद करुणापूर्ण तथा मंगलकारी सिद्ध होता था। एक बार श्रीरामकृष्ण ने शशि (स्वामी रामकृष्णानन्द) को अपने साथ तांगे में चलने से मना किया। यहाँ तक कि उन्होंने उन्हें गाड़ी में घुसने तक नहीं दिया। उस समय उनका वह आचरण बड़ा निष्ठुर लगा था, परन्तु देखिये आज उन्हीं शशि महाराज में कैसा अद्‌भुत रूपान्तरण हो चुका है! मैंने इसी तरह की अनेक घटनाओं का अनुभव किया है।

पच्चीसवीं बैठक (२४ अक्तूबर, १८९७)

स्वामी ब्रह्मानन्द सभापति थे। ब्रह्मचारी प्रकाशानन्द (जो बाद में स्वामी प्रकाशानन्द के रूप में १९१५ ई. में सैन्फ्रांसिस्को केन्द्र के अध्यक्ष हुए) ने कठोपनिषद

पर व्याख्यान दिया। तदुपरान्त प्रश्नोत्तर हुए (सम्भवतः गिरीशचन्द्र घोष ने ही उत्तर दिये थे)।

प्रश्न : श्रीरामकृष्ण अवतार की क्या आवश्यकता थी?

उत्तर : श्रीरामकृष्ण के आगमन के पूर्व धार्मिक आदर्श तथा साधनाओं की दशा अत्यन्त उथल-पुथल के दौर से होकर गुजर रही थी। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि यदि कोई एक चाभी एक बाजार के किसी कोने में छिपा जाय, तो सोचिये कि उसे ढूँढ निकालना कितना कठिन होगा? उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव होने के पूर्व — विभिन्न शास्त्रों, सम्प्रदायों तथा पन्थों के जंगल में से ईश्वरानुभूति की कुंजी को ढूँढ़ निकालना लगभग असम्भव-सा हो गया था। इन सारे मत-मतान्तरों के बीच सामंजस्य तथा समन्वय स्थापित करने के हेतु श्रीरामकृष्ण के आविर्भाव की आवश्यकता थी। उन्होंने ही यह घोषणा की, "ईश्वर के प्रति श्रद्धा का प्रत्येक रूप उन्हें प्राप्त करने का एक मार्ग है और ये सभी मार्ग उसी एकमात्र लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। ईश्वर की ओर ले जानेवाले सभी धर्म सत्य हैं और यदि कोई व्यक्ति हृदय से सच्चा तथा प्रयत्नशील है, तो वह किसी भी धर्म के सहारे ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।"

प्रश्न : त्याग के विषय में श्रीरामकृष्ण का क्या कहना था?

उत्तर : वे कहते थे कि ईश्वरप्राप्ति के मार्ग में बाधक सिद्ध होनेवाली कामनाओं तथा भोग्य विषयों के प्रति आसक्ति का त्याग ही सच्चा त्याग है। बाहरी तौर से संसार का त्याग करने की कोई आवश्यकता नहीं। मनुष्य ईश्वर के साथ आन्तरिक सम्बन्ध बनाये रखकर, जब तक चाहे संसार में रह सकता है। त्याग का लक्ष्य स्वयं को ईश्वर के साथ जोड़ना है।

प्रश्न : हम किन-किन उपायों से ईश्वर की उपासना कर सकते हैं?

उत्तर : प्रार्थना, ध्यान तथा उनके नामजप के द्वारा। अन्य किसी भी साधन की आवश्यकता नहीं है। यदि सम्भव हो, तो विधिपूर्वक पूजा करें। इस पूजन का चरम फल ईश्वरीय प्रेम तथा आनन्द है और उनके दर्शन के लिये प्रबल व्याकुलता ही उन्हें प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय है। श्रीरामकृष्ण मुझसे कहा करते थे, 'कभी आलसी भक्त मत बनना। सदा सोचना कि तुम्हें इसी जन्म में, बल्कि इसी क्षण ईश्वर का साक्षात्कार करना है।' इस प्रकार के मनोबल के साथ साधना करनी होगी।

प्रश्न : ऐसी भक्ति की प्राप्ति का क्या उपाय है?
उत्तर : सतत प्रार्थना।

प्रश्न : कृपया कालीपूजा की उस रात का वृतान्त सुनायें, जब भक्तों ने श्रीरामकृष्ण के चरणों में पूजा अर्पित की थी।
उत्तर : श्रीरामकृष्ण जब (कलकत्ते के) श्यामपुकुर में निवास कर रहे थे, उस समय वहाँ कालीपूजा का आयोजन किया गया था। वे पूजा करने के लिये पत्र-पुष्प, फल तथा नैवेध आदि विभिन्न सामग्रियों के बीच बैठे हुए थे। सहसा उन्होंने मेरी ओर उन्मुख होकर कहा, ''आज माँ-काली का दिन है। देखो इस प्रकार बैठकर ध्यान करना चाहिये।'' पता नहीं उस समय मैंने किस भाव के वशीभूत होकर उच्च कण्ठ से 'जय श्रीरामकृष्ण' का घोष किया और आगे बढ़कर उनके चरणों में पुष्पाञ्जलि दी। कमरे में उपस्थित बाकी लोगों ने भी ऐसा ही किया। श्रीरामकृष्ण के हाथों ने तत्काल वर तथा अभय की मुद्रा धारण कर ली और वे समाधि में डूब गये।
श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में ईश्वरप्राप्ति के अतिरिक्त किसी अन्य कामना का उदय ही नहीं होता था। उस दिन मैंने मन में बलात् अन्य विचारों को लाने का प्रयास किया, परन्तु कोई भी सांसारिक कामना जाग्रत नहीं हो सकी।

उन्तीसवीं बैठक (२१ नवम्बर, १८६७)

स्वामी ब्रह्मानन्द ने अध्यक्षता की। गिरीशचन्द्र घोष ने 'वेदान्त के मतानुसार कर्म' विषय पर बोलते हुए, श्रीरामकृष्ण के विषय में निम्नलिखित बातें कहीं --

''श्रीरामकृष्ण ने साधकों का पथप्रदर्शन करने के लिये अपनी स्वयं की सुविधा तथा स्वास्थ्य की जरा भी परवाह नहीं की। उनका करुणामय हृदय सदा-सर्वदा अन्य समस्त जीवों के दु:ख-कष्ट से व्यथित रहा करता था। इसीलिये वे सर्वदा बारम्वार जन्म ग्रहण करने की इच्छा प्रकट किया करते थे, ताकि आवश्यकता होने पर वे सबकी ईश्वर की ओर जाने में सहायता कर सकें। वे प्रायः ही कहा करते, ''यदि हृदय सांसारिक कामनाओं तथा आसक्ति के बन्धन से मुक्त नहीं है, तो ऐसी अपरिपक्व अवस्था में कर्म तथा सांसारिक कर्तव्यों का त्याग करने से कोई लाभ नहीं। इससे इहलोक या परलोक का कोई भी कल्याण-साधन नहीं होगा। मनुष्य चाहे तो संसार में मिथ्या आचरण भले ही कर ले, परन्तु आध्यात्मिक जीवन में ऐसा आचरण साधक तथा ईश्वर के बीच एक परदा खड़ा कर देता है।

''यदि मनुष्य आसक्त होकर कर्म करे, तो वह निश्चित रूप से माया तथा

अज्ञान में डूब जायेगा। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, 'यदि ध्यान करते समय कोई प्रबल कामना उदित हो और वह निरन्तर बनी रहे, तो ध्यान छोड़कर प्रार्थना करो। ईश्वर के प्रति सच्चे हृदय के साथ व्याकुलतापूर्वक प्रार्थना करो कि वे उस कामना को दूर कर दें और उसे पूरा न करें। ध्यान के समय यदि कोई कामना जाग्रत होती है, और विशेषकर कोई कुण्ठित कामना, तो धीरे धीरे वह अत्यन्त प्रबल हो जाती है। और यदि उस समय कई कामनाएँ प्रबल रूप से उपस्थित हों, तो इसका परिणाम काफी अशान्तिकर हो सकता है।

चौतीसवीं बैठक (२६ दिसम्बर, १८६७)

स्वामी ब्रह्मानन्द ने सभापतित्व किया तथा प्रश्नों के उत्तर भी दिये।

प्रश्न : ध्यान के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण के क्या निर्देश थे?

उत्तर : श्रीरामकृष्ण ने सभी से ध्यान करने को कहा। यदि ध्यान के नियमित अभ्यास की आदत न डाली तथा बनाये रखी जाय, तो सम्भव है कि मनुष्य अपनी उच्च आध्यात्मिक अवस्था से पतित होकर निम्नतर अवस्था में आ जाय। एक बार श्रीरामकृष्ण ने (अपने गुरुदेव) तोतापुरीजी से पूछा था कि उनके समान ज्ञानसिद्ध व्यक्ति के लिये अब भी नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करने की क्या आवश्यकता है? इस पर तोतापुरीजी ने अपने चमकते हुये लोटे की ओर इंगित करते हुए कहा था कि यदि उस पात्र को प्रतिदिन माँजा न जाय, तो इसकी चमक तथा स्वच्छता स्थिर नहीं रहेगी।

श्रीरामकृष्ण कहते थे कि यदि किसी को अच्छा तथा प्रगाढ़ लगे, तो सिर पर पक्षी बैठ जान पर भी उसे इसका बोध नहीं होगा। ऐसा उनके स्वयं के जीवन में भी घटित हुआ था। एक दिन जब वे काली-मन्दिर में ध्यान कर रहे थे, तो उनके सिर पर एक कौआ बैठ गया था, परन्तु उन्हें इसका भान नहीं हुआ था। यदि कोई गहरे ध्यान में डूब जाय, तो उसे निश्चित रूप से ईश्वर का दर्शन होना सम्भव है।

वर्तमान भारत और स्वामी विवेकानन्द

स्वामी सत्यरूपानन्द

हमारा देश आज एक संक्रान्ति के काल से गुजर रहा है। विभिन्न प्रकार की विघटनकारी तथा हिंसात्मक शक्तियाँ देश में सक्रिय हो उठी है। आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के संकट आसन्न प्रतीत हो रहे हैं। इस संक्रान्ति के क्षणों में स्वामी विवेकानन्द के उपदेश हमारा स्पष्ट मार्ग दर्शन करने में समर्थ हैं।

अतीत का स्मरण करो : जिस प्रकार किसी वृक्ष की जड़ें भूमि के भीतर होती है, उसी प्रकार राष्ट्र की जड़ें भी उसके अपने अतीत में समायी हुई होती है। इसीलिये स्वामी विवेकानन्द जी ने हम भारतवासियों से कहा कि अपने अतीत का स्मरण करो, अपने प्राचीन इतिहास का अध्ययन करो तथा यह स्मरण रखो कि तुम उन महान ऋषियों मुनियों की संतान हो जिन्होंने विश्व को आत्मा और परमात्मा का ज्ञान दिया था। जिन्होंने यह घोषणा की थी कि तुम सब अमृत के पुत्र हो। अमृत की संतान हो। उस एक ही ब्रह्म से तुम सबकी उत्पत्ति हुई है। अतः सब सहोदर सहोदरी हो। यह सम्पूर्ण वसुधा तुम्हारा घर है। सारी पृथ्वी के लोग तुम्हारे अपने जन हैं। मनुष्य को देवता बनाने वाले, उसे नर से नारायण बनाने वाले उदात्त विचार तथा जीवन पद्धति हमारे ही पूर्वजों ने विश्व को दिया था। अतः अपने वैभवशाली अतीत का स्मरण करो तथा उस पर गर्व करो।

अतीत से शिक्षा लेकर वर्तमान में कर्म करो : अतीत को जानकर हमें उससे शिक्षा लेनी होगी, प्रेरणा लेनी होगी। अपने वैभवशाली अतीत का स्मरण मात्र या उस पर केवल गौरव करना पर्याप्त नहीं होगा। हमारे पूर्वजों ने उन उच्च एवं उदात्त विचारों के आधार पर जिस प्रकार जीवन-यापन किया था, जिस प्रकार महान और आदर्श चरित्र का निर्माण किया था। हमें भी उसी प्रकार का महान जीवन जीना होगा। वैसे ही उच्च चरित्र का निर्माण करना होगा, महान चरित्रवान बनना होगा तभी हम इस संकट से उबर सकेंगे। इसके लिये हमें वर्तमान में कठिन परिश्रम करना होगा। कितनी भी कठिनाइयाँ विघ्न्ट-बाधाएं क्यों न हो, हमें कमर कस कर कर्म में लग जाना होगा। स्वामीजी ने हमारा आह्वान कर कहा है — चुनौतियों को स्वीकार करो, दुर्बलताओं को त्यागो तथा अपने और राष्ट्र के निर्माण का सारा भार अपने कंधों पर ग्रहण करो। स्मरण रखो कि आज तुम जो हो, तुममें जो भी गुण-दोष है उन सभी के लिये तुम स्वयं उत्तरदायी हो। तुम आज जो भी हो वह

तुम्हारे अपने कर्मों के फलस्वरूप ही है। अतः कटिबद्ध होकर कर्म में जुट जाओ।

धर्म और आध्यात्मिकता ही भारत का मेरुदण्ड हैं : आध्यात्मिकता हमारे राष्ट्र की आत्मा है। धर्म हमारा मेरुदण्ड है। भारत का आध्यात्मिक आदर्श विश्व जनीन है। हमारे धार्मिक आदर्श में साम्प्रदायिकता की गंध तक नहीं है। हम न केवल सभी धर्मों का सम्मान करते हैं बल्कि हम सभी धर्मों की स्वीकार भी करते हैं। हम यह मानते हैं कि संसार के सभी धर्म उस एक ईश्वर के पास पहुँचने के रास्ते हैं जो ईश्वर प्रेम और आनन्द स्वरूप हैं। इसलिये भारत में हमने सभी धर्मों के अनुयायियों का स्वागत किया है। सभी धर्म के लोगों के लिये इस देश में स्थान है। अतः हम भारतवासियों का यह कर्त्तव्य है कि हम सर्वप्रथम अपने जीवन में इस महान आध्यात्मिक आदर्श को स्वीकार करें, अपने स्वयं के जीवन का गठन करें तथा अन्य सभी को उनके अपने आदर्शों के अनुसार जीवन गठन में सहायता करें। इसी एक उपाय से ही हम साम्प्रदायिकता के घातक विष से बच सकते हैं

देश भक्ति और देश सेवा : भारत के कल्याण में ही हमारा कल्याण है। हम सभी अपने देश की सेवा करना चाहते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी ने देश सेवा करने वालों के लिये कुछ शर्तें रखी हैं। उन शर्तों को पूरी करके ही हम देश की सच्ची सेवा कर सकते हैं। देश सेवा की सबसे पहली शर्त है कि हम अपने देशवासियों के लिये अपने अशिक्षित दुखी दरिद्र देशवासियों के लिये हृदय से सहानुभूति रखे। स्वामीजी पूछते हैं कि क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि तुम्हारे करोड़ों देशवासी भाई भूखे हैं, नंगे हैं, अशिक्षित है। क्या यह सोचकर तुम्हारी नींद हराम हो गई है? यदि हाँ तो यह पहली शर्त है केवल पहली।

दूसरी शर्त है कि क्या तुमने अपने इन दुखी दरिद्र देश भाइयों के दुख दूर करने का कोई उपाय सोचा है? क्या उनके दुःखों को दूर करने का कोई व्यवहारिक उपाय निकाला है? यदि हाँ तो यह दूसरी शर्त है।

और तीसरी शर्त है — जो उपाय तुमने सोचा है उसे क्रियान्वित करने में यदि तुम्हारा समाज, तुम्हारे बंधुबांधव, यहाँ तक कि तुम्हारे स्वजन संबंधी भी तुम्हारा विरोध कर रहे हों - तुम्हारे विरूद्ध खडगा हस्त खड़े हो तो भी क्या तुम वह करने को प्रस्तुत हो। जो तुम करना चाहते हो? यदि हाँ तो यह तीसरा शर्त है।

स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा बताई गई इन शर्तों को पूरी करने पर ही हम एक सच्चे देश भक्त और देश सेवक हो सकते हैं तथा तभी हम देश की सच्ची सेवा कर सकते हैं। आज संकट की इस घड़ी में स्वामी जी के इन उपदेशों का चिंतन हमें सही दिशा देकर उचित मार्ग में अग्रसर कर सकता है।

रामकृष्ण मिशन : उद्देश्य तथा कार्यपद्धति

स्वामी ब्रह्मानन्द

(मिशन के प्रथम अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्दजी द्वारा लिखित यह लघु आलेख अंग्रेजी के 'इण्डियन रिविउ' पत्र के १९१० ई. किसी अक में प्रकाशित हुआ था। मिशन के मूलभूत आदर्शों की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति की दृष्टि से इसके महत्व को देखते हुए इस शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में 'विवेक-ज्योति' के पाठकों के लिए उसका हिन्दी रूपान्तरण प्रस्तुत किया जा रहा है। — सं.)

भगवान रामकृष्ण के सुविख्यात शिष्य विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्द ने ही सर्वप्रथम मानव-जाति के नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नयन हेतु अपने गुरुदेव के सर्वव्यापी तथा सार्वभौमिक सन्देश को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया था। श्रीरामकृष्ण के सहज तथा गम्भीर सन्देश को स्वामीजी ने आधुनिक मानव की अंग्रेजी भाषा में अपने प्रांजल भाषणों के माध्यम से ऐसा लोकप्रिय बनाया कि इस विषय में अधिक कुछ कहना निरर्थक है। उनके व्याख्यानों के माध्यम से उनके गुरुदेव के हृदय का अनन्त प्रेम तथा सार्वभौमिकता व्यक्त हो उठी है। पुराने अथवा नये जगत में, जिस किसी को भी इस व्याख्यानमाला का यत्किंचित् भी अनुशीलन करने का सौभाग्य मिलता है, यह उसके अन्तर को स्पर्श कर लेता है। उनके गुरुदेव वेदों में अनुभूत शाश्वत तथा सर्वव्यापी विश्वधर्म की जीवन्त प्रतिमूर्ति थे। स्वामीजी द्वारा अपने गुरुदेव के सन्देश की व्याख्या ने जगत के धर्ममत तथा नीति के प्रचार-प्रसार पद्धति को एक नवीन पथ प्रदर्शित किया है। इसका प्रमाण यह है कि प्रत्येक धर्म के विचारवान उपासकों ने धीरे धीरे अपनी धर्मान्धता, कट्टरता तथा संकीर्णता का परित्याग कर दिया है और इसके फलस्वरूप अपनी पिछली पीढ़ियों की तुलना में वे कहीं अधिक सहानुभूतिशील तथा उदारचेता हो गये हैं। अपने महान पूर्वपुरुष स्वामी विवेकानन्द के समान ही श्रीरामकृष्ण के सन्देश तथा साधना का प्रचार करनेवाले, इस मिशन के असाम्प्रदायिक संन्यासीगण आज सम्पूर्ण विश्व में धर्म के सच्चे आचार्य माने जाते हैं और सर्वत्र उनकी सेवा की काफी माँग है। यही संसार के सभी देशों में दृष्टिगोचर होनेवाले आध्यात्मिक विकास के नवीन भाव का एक जीवन्त प्रमाण है।

रामकृष्ण मिशन समस्त नर-नारियों में अन्तर्निहित ब्रह्मभाव की शिक्षा देता है। यह सत्य उनके समक्ष धर्म की साधना से अनुभूत होता है, अतः जो कुछ मनुष्य को उसके दिव्य स्वरूप की अनुभूति की ओर ले जाता है, उसी को

धर्म कहते हैं और वही मनुष्य का सर्वोत्तम मित्र है। यह कभी युक्ति का विरोध नहीं करता, अतः जो कुछ भी अयौक्तिक है वह अधर्म है और वही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है।

यह (मिशन) उस एकमात्र परम सत्ता की उपासना का प्रचार करता है, जिसे जगत के विभिन्न राष्ट्रों ने ब्रह्म, अल्ला, गॉड, जिहोवा आदि नाम दिये हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे एक ही पानी विभिन्न भाषाओं में अलग अलग नामों से परिचित होता है। महत्तम ईश्वर तथा मनुष्य के बीच कोई अन्य सत्ता नहीं है। यह शिक्षा श्रीकृष्ण के सन्देश के साथ पूर्ण सामंजस्य रखती है, जो समस्त वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के प्रतिनिधि थे। यह धर्म किसी ऐसे रहस्यवाद की बात नहीं करता, जो विचित्र बातों में विश्वास जगाकर मनुष्य को बुद्धू बनाये और धर्मदान के स्थान पर उसे सत्य से पूर्णतः अनभिज्ञ एक अधार्मिक रहस्यवादी बना दे। इस धर्म का कहना है कि वेदान्त (उपनिषद्) ही अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के समस्त धर्मों का सामान्य आधार है और अपने में निहित सत्यों को समझने में यह कुछ हद तक आधुनिक विज्ञान को सहायक मानता है। यह धर्म एक ही परमात्मा की विभिन्न अभिव्यक्तियों की सेवा करने में विश्वास रखता है और इसे अपने आध्यात्मिक स्वरूप के विकास में उपयोगी मानता है। यह धर्म की साधना को ही सर्वाधिक महत्व देता है और केवल कुछ मतवादों को लेकर उनके पक्ष या विपक्ष में बौद्धिक ऊहापोह में ही इतिश्री नहीं मान लेता। यह प्रत्येक मनुष्य को उसके जन्मजात धर्म में ही निष्ठा रखने की प्रेरणा देता है, क्योंकि भारतीय ऋषियों, बुद्ध, जरथुस्त्र, ईसा, मुहम्मद आदि अवतारों या परमेश्वर के सन्देशवाहकों द्वारा बताया गया प्रत्येक सच्चा धर्म ईश्वर और केवल ईश्वर की ओर ही ले जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसका अपना धर्म ही सत्य की उपलब्धि का सहजतम मार्ग है और किसी अन्य धर्म का अपनी प्रकृति के साथ ठीक ठीक सामंजस्य न हो पाने पर, वह इस जन्म या अनेक जन्मों में भी मनुष्य को उसके अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति नहीं करा सकता। इसलिए यह मिशन किसी हिन्दू को ईसाई अथवा ईसाई को हिन्दू या मुसलमान बनने की सलाह न देकर; हिन्दू को एक सच्चा हिन्दू, एक ईसाई को एक सच्चा ईसाई और मुसलमान को एक सच्चा मुसलमान बनने को कहता है। इस कारण रामकृष्ण मिशन धर्मान्तरण को पूर्ण रूप से गर्हित मानता है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मिशन विश्व के सभी धर्मों से सहमत है, परन्तु उनमें से किसी के भी सत्यता के एकाधिकार के दावे को स्वीकार नहीं करता। मानव मन की विविधता के कारण धर्मों में भी विविधता होना आवश्यक है। कुछ लोग मूलतः शान्त तथा आनन्दमय (सात्त्विक) होते हैं, कुछ अन्य चंचल तथा महत्वाकांक्षी (राजसिक) और कुछ अन्य मूलतः जड़ तथा दीर्घसूत्री (तामसिक) होते हैं। इस कारण जगत में अनेक धर्मों का होना आवश्यक है और उनका मुख्यतः चार श्रेणियों में वर्गीकरण किया जा सकता है भक्तियोग (भक्ति का मार्ग), कर्मयोग (कर्म का मार्ग), राजयोग (एकाग्रता का मार्ग) — और ज्ञानयोग (विचार का मार्ग)।

इस प्रकार रामकृष्ण मिशन अतीत तथा वर्तमान के समस्त धर्मसंघों से अलग है, क्योंकि केवल इसी ने विभिन्न धर्मों में समन्वय, उनके सामान्य आधार तथा उन सबकी आवश्यकता के सूत्र का आविष्कार किया है। दूसरी ओर जगत के अन्य सभी धर्ममत अपनी अभ्रान्तता, पूर्णता तथा अन्यों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता का दावा करते हैं। वर्तमान युग में श्रीरामकृष्ण ने ही इस शाश्वत तथा सार्वभौमिक धर्म का आविष्कार तथा प्रचार किया, जो वैदिक ऋषियों द्वारा आविष्कृत होकर कुछ चुने हुए लोगों को ही बताया गया था और श्रीकृष्ण द्वारा तत्कालीन भारत के सभ्य लोगों के बीच प्रचारित हुआ था। 'श्रीमद् भगवद्गीता' उपनिषदों पर श्रीकृष्ण का एक लोकप्रिय भाष्य है, जो उन्होने नर या मानव ऋषि के अवतार अर्जुन के माध्यम से प्रत्येक युग के सुयोग्य लोगों के लिए प्रस्तुत किया था। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के विचारों का जो सार्वभौमिक तथा सनातन भाव व्यक्त होता है और जो अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के समस्त अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैतवादी भावों का आधार है; श्री शंकर, श्री रामानुज, श्री मध्व तथा अन्य आचार्यगण उसके पूर्ण स्वरूप की धारणा नहीं कर सके थे और उनमें से प्रत्येक द्वारा इसके एक अंश मात्र को ही ग्रहण करने के कारण ही वे आपस में सहमत नहीं हो सके थे।

सभी धर्मों के बीच समन्वय तथा शान्ति और मानव-मात्र के बीच सद्भाव की स्थापना के द्वारा सभी लोगों के आध्यात्मिक पुनरुजजीवन के हेतु (इस युग में) श्रीरामकृष्ण के माध्यम से पुनः वे ही सार्वभौमिक तथा शाश्वत भाव व्यक्त हुए हैं। यदि बारम्बार जन्म-मृत्यु के कारणरूप अज्ञान को सदा-सर्वदा के लिए

मिटाना हो; यदि प्रत्येक जीव में निहित दुखरहित चिर जीवन तथा अनन्त आनन्द का सन्धान देनेवाले ज्ञान की इसी जन्म में उपलब्धि करनी हो; यदि घृणा, भेदभाव, द्वेष, स्वार्थ तथा अन्य दोषों से परिपूर्ण इस जगत में प्रेम शान्ति तथा सद्भाव लाना हो; और इस प्रकार यदि हम स्वयं तथा दूसरों को सभी प्रकार से सुखी देखना चाहते हों; तो सम्पूर्ण जगत में, सभी भाषाओं में, विद्वानों तथा अज्ञानियों में, गरीबों तथा धनिकों में, सभ्यों तथा असभ्यों में, आशावादी तथा हताशों में, सुवेषी तथा कुवेषधारियों में, सम्मानित तथा परित्यक्तों आदि सभी में; जाति, धर्म तथा राष्ट्रीयता आदि से निरपेक्ष भाव के साथ श्रीरामकृष्ण का सर्वग्राही तथा सबको दिलासा देनेवाले इस सन्देश का प्रचार करना होगा।

इस बात को ध्यान में रखकर और विश्व के समस्त नर-नारियों की एक ही परमात्मा की विभिन्न अभिव्यक्तियों के रूप में सेवा करते हुए, उनके समक्ष हमें श्रीरामकृष्ण के उस सन्देश को प्रस्तुत करना होगा; जो मधुर, सरल, स्पष्ट तथा सान्त्वनामयी भाषा में प्रत्येक जीव के दिव्य, आनन्दमय तथा शाश्वत स्वरूप की घोषणा करता है और हमारे अज्ञानजनित पाप, मृत्यु तथा अनन्त नरकाग्नि के हौए के अनस्तित्व की घोषणा करते हुए बताता है कि ये सब हमारे मन के विकृत प्रवृत्तियों के द्वारा ही उत्पन्न हुई हैं। इस प्रकार मिशन के सेवकगण अपनी मुक्तिलाभ करके, अपने और साथ ही साथ दूसरों के लिए भी वरदान-स्वरूप हो जायेंगे।

मिशन के प्रत्येक केन्द्र के साथ युवा पीढ़ी के कल्याणार्थ जूनियर विवेकानन्द समितियाँ भी जुड़ी होंगी, जिनमें सप्ताह में दो-तीन दिन स्थानीय बालकों तथा युवकों को सरल भाषा में वेदों, उपनिषदों, पुराणों, इतिहासों (रामायण तथा महाभारत) और साथ ही विश्व के अन्य धर्मग्रन्थों की कथा-कहानियों के माध्यम से धर्मतत्त्वों की शिक्षा दी जायगी। मिशन के प्रत्येक केन्द्र के प्रत्येक सदस्य से हम यही आशा करते हैं कि वह पूरी तौर से अपने केन्द्र के अध्यक्ष के निर्देशानुसार कार्य करेगा और वे भी मिशन के महाध्यक्ष के निर्देशानुसार परिचालित होंगे।

श्रीरामकृष्ण का आशीर्वाद मिशन के समस्त कर्मियों पर वर्षित हो, ताकि वे निष्ठापूर्वक उपरोक्त कर्तव्यों का पालन कर सकें और इस प्रकार स्वयं को तथा दूसरों को भी धन्य कर सकें। भगवान श्रीरामकृष्णदेव के चरणों में यही मेरे अन्तर की सतत प्रार्थना है।

श्रीरामकृष्ण-शिष्यों के हिन्दी पत्र

(श्रीरामकृष्ण के अधिकांश शिष्यों ने बंगाल में ही जन्म लिया था। उनमें से प्रायः सभी अपनी मातृभाषा बंगला तथा अंग्रेजी, सस्कृत आदि भाषाओं में निष्णात थे। उनमें से कइयों ने हिन्दी भाषा भी सीखी थी और स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दी में कई व्याख्यान दिये थे। बेलुड़ मठ के संग्रहालय से स्वामी प्रभानन्द जी महाराज ने स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज के दो हिन्दी पत्रों की फोटो-कापियाँ हमें भेजी है, जिन्हें हम इस अंक में प्रकाशित कर रहे हैं और साथ ही स्वामी शिवानन्दजी महाराज के भी दो हिन्दी पत्र काफी काल से हमारे कार्यालय में पड़े थे, उनका भी इसके साथ ही मुद्रण किया जा रहा है। इन पत्रों की भाषा अनगढ़ सी है, परन्तु भाषा की तुलना में भाव की दृष्टि से ही इनका महत्व है और इस कारण इनकी भाषा में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, पठन की सुविधा के लिए पूर्ण विराम तथा कुछ शब्द कोष्ठकों में दे दिये गये हैं। — सं.)

श्री श्री रामकृष्णः शरणं ॥

मेवाड़
उदयपुर

सेठजी श्री लाला बद्री साहा जी !

बहुत दिनों से आपका कोई संवाद मुझे नहीं मिला - मैं मलसीसर से खेत्री होकर जयपुर आया था - वहां से आपको मैं ने श्रीमद्विवेकानन्दजी की दो कपी पुस्तिका लकचर की भेजी थीं सो शायद आपको वक्त पर मिल गई होंगी।

पत्र द्वारा मालूम हुआ कि मेरा एक गुरु भाई स्वामी सुबोधानन्द जी अलमोरा होके श्री बद्रीनारायण यात्रा को पधारे हैं. आज कल वे कहां पर हैं ? कृपा करके मुझे यह संवाद देना — और उनके बारेमें सविस्तार लिखना।

आप सपरिवार कैसे हैं ? आपका चिरञ्जीव कैसे हैं ? आपके भाईयों में से विद्यामें किसकी कैसी उन्नति हुई ? किसीने परिक्षा दी कि नहीं ? आप आज कल क्या कर रहे हैं ? श्रीश्रीगुरुदेव की सेवा वैसी ही चल रही है या नहीं। व्यापारमें उपार्जन कैसा होरहा है (?) एकायक ये सब बातें जानने के लिये मुझे बड़ी अभिलाषा हो रही है (।) भरोसा है आप पत्र द्वारा सब मालूम करवायके मेरी यह अभिलाषा दूर करेंगे।

अब आपको मैं यहां का जरा हाल बयान करके इस पत्रका उपसंहार करता हूँ - अजमेर से मैं रेल में चितोड़ आया - चितोड़ ष्टेषन से चितोरगड़ प्रायः तीन चार माइल होंगे - यह गिहलोठ (?) शिशोदीयों के पुरातन गड़ और राजधानी है - इसी गड़ में अब्बल आलाउद्दिन ने चढ़ाई की थी. यह एक चार पांच माइल लम्बा और एक आध माईल चौड़ा पर्वत के उपर है. उपर ऐसा विस्तृत मयदान है कि जिसको देख के पर्वत की बात याद नहीं रहती - फिर कितनेक तो बड़ा २ वृक्ष और स्वच्छ निर्मल जल परिपूर्ण तलाव हैं - यह स्वभावसे ही एक अपूर्व गड़ बन रहा था - फिर राजपुतों ने और भी दृढ़ किया - इस पाहाड़ का तीनों पार्श्वों से एक प्रशस्त नदी बहती है। इसके उपर सैकड़ों टुटे फुटे मुकाम है जिनसे मालूम होता है कि एक दिन यह भारत में एक बड़ा ही समृद्ध नगर और दृढ़ दूर्ग था। अभी भी वहां एक छोटा-सा गाम बसता है। अब चितोड़ रोड़ के उदयपुर तीश क्रोश एक्के में आया। रस्ते में चारो तरफ ताल खजूर और नाना वृक्षों का घना जंगल बगैर और हरा हरा अनत्युच्च पर्वत बगैर कुछ भी नजर नहीं आता था (।) पीछे ऐसा जंगल और पर्वत का अन्दर हो कर उदयपुर में पौंचा। यह कूल भारत में एक निहायत खूबसूरत सहर है (।) अगरचे यह सहर खूद ऐसा कुछ खूबसूरत नहीं है परन्तु यह स्थान बड़ा ही रमणीय है (।) इसका चारो तरफ फक्त हरियाली, पर्वत श्रेणी और बड़े २ तलावों से वड़ी खूबसूरती हो रही है। मेवाड़ में राजपुताना का मरुभूमी की चिन्ह भी नहीं है. बलकिन मुझे कभी २ यहांका आबहावा से वंगला देश का याद आता है - यहां एक चोट खूब वर्षा हो गई है - फिर भी वर्षा की तैयारी मालूम होती है। आपके वहां वर्षा की क्या हाल है ? आप सपरिवार मेरा शुभाशीर्वाद और आन्तरिक प्रीति जानें - मेरे तबीयत हाल अच्छी है - इति

आपका

अखंडानंद

पत्र इस ठिकाने में देना —

गोलाप बाग, पाला गणेश जी

मेवाड़, उदयपुर, राजपुताना

श्री श्रीरामकृष्णः शरणम् ॥

मेवाड़
नाथद्वारा

श्रीयुत साह जी महाशय !

आपकी भेजी हुई एक चिट्ठी और एक पौंड था यहां यथा समय में पौंच गई हैं। स्वामी सुबोधानन्द जी के मठ में कुशल पौंचने का संवाद पढ़ कर मुझे बहुत ही हर्ष हुआ।

आजकल आपके वहां श्रीश्रीगुरु महाराज की सेवा कैसी हो रही है ? मठ से हमेशा आप को संवाद मिलते या नहीं ? आज कल आप के कौन कौन भाई पढ़ते हैं ? आपके व्यापार कैसा चल रहा है ? भाइओं को बराबर पढ़ाते जाइये। बिना काम समय वृथा व्यतीत नहीं करना। आलस्य सर्वानर्थ का बीज है। इससे खुब सावधान रहना (।) भारत के प्रायः समस्त धनाढ्य लोगों में ही आज इस पाप बीज की फसल खुब जोर से हो रही है। जिनको घर में कुछ खाने का है वे तो और किसी की परवा ही नहीं रखते हैं और सारी पृथ्वीतो उनके साम्ने एक कटोरी सी मालूम होती है। परन्तु वे मूढ़ तो यह जानते ही नहीं कि आज दिन भारत में जो कुछ सुख दिख पड़ता है वह फक्त एक तरह का ऐन्द्रजालिक व्यापार है (।) नहीं तो दर असल आज दिन भारत में किसी की रोटी तक भी नहीं है। अब इस दुःसमय में भारतवासियों को क्या २ कर्म करना चाहिये ? मेरे समझ में किसानों के पहले उन्नति साधन करना चाहिये। क्योंकि भारत की साधारण लोग संख्या में सब ही किसान हैं। भारत में २५ करोड़ मनुष्य हैं (।) उनमें सैकड़ों ८३ मनुष्य किसान निकले हैं। सो अब आप विचारिये २५ करोड़ मनुष्यों में कितने किसान होंगे ? और ये लोग ही और सर्व्व साधारण के अन्नदाता और वस्त्रदाता हैं। परन्तु भारत में आज ऐसा विपर्य्यय हो रहा है कि, वे लोग ही नंगे और भुखे मरते हैं। सिकन्दर बादशाह भारतीय किसानों के हाल देखके चमकित हो गये थे (।) उस वक़्त भारत में ऐसी राजकीय व्यवस्था थी कि चाहे देश में कैसी ही आपद विपद हो परन्तु वे लोग निरन्तर निरापद और निश्चिन्त रहते थे। आज उन्हीं लोगों के ऊपर हर तरह की आपद विपद हो रही है। इस महापाप का दो जन मुख्य कारण हैं (—) एक तो राजा लोग और दूसरा महाजन लोग (।) दोनों तरफ से दो महा असुर इनको खाये

जाते हैं परन्तु तो भी वे पवित्र निष्काम कर्म्म परायण किसान लोग अपने स्वधर्म्म को नहीं छोड़ते हैं। ओह ! धन्य उमके स्वार्थत्याग ! धन्य उनके धैर्य्य ! और धन्य उनके श्रम !!! वे भी अगर आज खफा होकर अपने २ हल और काम छोड़ दें तो नगरवासी राजा औ प्रजाओं का क्या हाल होगा ? यह कोमल गद्दी फिर कहां से आवेगी ? यह सरस अन्न फिर कहां से आवेगा ? ये साल दोसाले कहां से आवेंगे ? ये सब धन उन्हीं के श्रमसाध्य हैं और न्यायतः उन्हीं के प्राप्य और भोग्य हैं। परन्तु अत्याचारी राजा और नगरवासी प्रजा अन्याय करके उनके वह श्रमसाध्य धन से उन्हीं को वञ्चित कर रही है (।) तो भी वे मेषवत् किसान लोगों के पवित्र हृदय में प्रतिहिंसा रूप कीट का प्रवेश नहीं हो सकता है। अब आपको तो इसमें कुछ सक् नहीं है कि वे किसान और मिहनती लोग ही मनुष्य समाज की खाश बुनियाद हैं और मनुष्य समाजरूप शरीर का नसाजाल हैं (।) वे नहीं हों तो मनुष्य समाज की स्थिति एक क्षण भी नहीं बन सकती है। इस लिए आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि आप वहां के पार्व्वतीय किसानों को अधिकतर अल्प ब्याज से रूपैया उधार दीजिये और आपके भाईयों में से किसी को कृषि विद्या से वाक़िफ करावें। भारतीय किसान लोग कृषि विद्या से ऐसे मूर्ख हो रहे हैं कि वे खेती में यथायोग्य खात मिलाने की रीतियां भी नहीं जानते हैं। अब आप विचारिये, खाश बुनियाद में ही जब ऐसी कमजोरी रही, तो सारी इमारत कैसे मजबूत रहेगी। यह बात कभी सम्भव नहीं है। इसीलिये मैं आपको कहता हूं कि आप अपने स्वधर्म्म को न छोड़ें। गीता में भगवान ने ही कहा है कि :--"कृषि गोरक्ष वाणिज्यं वैश्य कर्म्म स्वभावजम् "। इनमें कृषि और गोरक्षा ही सर्वप्रधान है क्योंकि गायों की उन्नति बिना कृषि की उन्नति नहीं हो सकती है और कृषि की उन्नति बिना वाणिज्य की उन्नति नहीं हो सकती है। अतः आप एक 'कृषि गजट' मंगवाकर उसे उल्था करवाके उसकी जो कोई तरकीब आपके उस देश में उपयोगी ही उससे अगर आप वहां की जमीन की उत्पादिका शक्ति बढ़ा सकें तो उस कर्म्म से आपका आर्थिक लाभ और किसानों को वह तरकीब मालूम होने से समस्त भारत में महा लाभ पौंचेगा।

मैं स्वामी विवेकानन्द जी का आज्ञानुसार यहां के जन साधारण में विद्या प्रसार करने की कोशिश कर रहा हूं परन्तु यहां ऐसे देश हितैषी कोई नहीं है कि जो मेरे इस काम में कुछ मदद करें। एक महीने से उपर हुवा एक बंगाली बाबु मुंमई से मेरे पास यहां आये हैं जो कि मेरे श्री १०८ श्री श्री गुरु महाराज

के एक भक्त हैं। वे यहां के कतिपय बालकों को पढ़ा रहे हैं। परन्तु फक्त एक उनसे काम चलना मुश्किल है। आपके जानने में ऐसा कोई सदाशय महापुरुष हैं कि जो अपने स्वार्थ त्याग करके भारत के गांव २ नगर २ विद्या और नीति दान कर सकें ? किमधिकमिति (।) मेरे शुभाशीर्वाद आपको मालूम हो और सबको मालूम करें (।) इति आपका अखंडानन्द ॥

श्री गुरु महाराज

काशी
खाजांची का बाग, लक्षा
१७ जुलइि १९०२

प्रिय लालाजी

स्वामि सदानन्दने एक खत मुझे भेजा था। जिसमें पांच रुपइयाका एक नोट भी था (--) आपके लिये एक चार फतिला पितल के भेजने के लिये। परंतु बाद उसके स्वामी ब्रह्मानंदजी का एक तार आ पहुंछी जैसा विना बादल शिर पर वज्रपात हुया (।) जगदविख्यात प्राणसे भी प्रिय स्वामिजि महाराज हम सब भाइयोको शिष्यो को छोड़कर महासमाधी मे प्रवेश कर गयें। खबर जैसी मिलि हम सव कर्तव्य कर्म भुल गये, कुछ दिनों तक, अब इयाद आइ आपका फतिलेके विषय (।) काल बाजारमे आपना कृष्णलाल बाबाजी को भेजा था (।) खबर आइ कि चार बर्तन ओजनमे दश सेर साढ़े आठ छटाक। १ रुपइया ५ आना सेर का हिसाब से करीव १३ रु. १३ आना लागे का आलावे प्याकि (पैकिंग) ओर रेलका मासूल। अगर आपका इच्छा होय तव वाकि रुपेया भेजना (।) नहि होय तब लिखना आपका ५ रुपेया वापिस कर दि जाइगि।

अब लाला साहेब केया कहुंगा बहुत अपशोचमे हुं परंतु गुरु महाराज का काम चल जावेंगे (।) स्वामिजि महाराज जो बीजें बपन कर गये हें उन सभी का वृक्ष अवश्य पयदा होगा (।) जगज्जननी अवश्य उन सभी का जड़ मे वैठी है व शक्ति अभी क्षीण होने का नहि (।) किसि तरह से स्वामिजि महाराजका इच्छासे इस पवित्र काशीजिमे एक वेदांत आश्रम खुल गया है (।) गुरुमहाराजका इच्छा पीछे जो होने का होगा।

हमारा आशीर्वाद आप सव कोइ जानना (।) सिद्धदास को जानाना और सब लड़कों को जानाना और जलदी खत भेजना (।)

मे वड़े खुस हुया हुं कि आप लोक सहरमे एक दुकान खुल दिये हें। हम दिलसे प्रार्थना करते हें कि लक्ष्मिजि उहापर वैठ जांय और आप सव आच्छा हालत मे रहें। सब को कुशल लिखकर सुखी करना। इति

शुभाकांक्षी
शिवानंद

श्रीश्री रामकृष्णः शरणम्

The Ramakrishna Math
Belur P O., Howrah
Dated, the ११ मै 1916

प्रिय लाला बद्रीसाजी

बहुत दिन बीत गया आपका खत नही मिला (।) आप सब कैसा है (?) स्वामी तुरीयानन्दजीका खत से मालुम हुआ की आपको तबियत ठिक नही है (।) अब कैसी है लिखना। आशा है की नरेन्द्र प्रसाद की विवाह कार्य निरापद से हो गया होगा। सिद्धदास परीक्षा देकर घर आया हुया है खबर मिल गइ (।) प्रार्थना करता हु की व पास हो जाय। श्री गुरु महाराज की श्रीमूर्ति आप का घर मे विराजमान है और आप उनका पूजा करते है और आप जिस विषय के वास्ते प्रार्थना करोगे आपका वही मिलेगा मै निश्चय जानता हुं। दुर्लभ चिज मुक्ति तक भी व दे सकते हैं पाथिव वैषयिक चिज तो बहुत थोडी बात है।? हम सभों का आशीर्वाद आप सब काइ जानना और कुशल समाचार शीघ्र लिखना इहा के सब कुशल है श्री गुरुमहाराजका कृपा से। आप लोगों का सर्वप्रकार के कुशल सदा प्रार्थना करता हुं।

तुरीयानन्द स्वामीजि को हमारा नमो नारायण् कह देना (।) मेरा अलमोड़ा जानेका विचार है।

आपका शुभ प्रार्थी
शिवानन्द

शताब्दी के आलोक में रामकृष्ण मिशन

स्वामी भूतेशानन्द

श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव मानव-सभ्यता के इतिहास की एक विशिष्ट घटना है। उनका जीवन तथा सन्देश किसी एक देश, जाति या समाज के लिए ही नहीं, बल्कि समग्र विश्व के लिए मंगलमय है। जब कभी मानवीय सभ्यता विपत्ति में पड़ेगी, मनुष्य अपने धर्म को भूलकर ध्वंश के मार्ग पर अग्रसर होगा, तब उनका जीवनादर्श ही उद्धार का पथ दिखायेगा। युग की आवश्यकतानुसार ही युगपुरुषों का आगमन होता है। उनका सम्पूर्ण जीवन दूसरों के लिए ही समर्पित होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत का इतिहास, जैसे एक ओर हताशा से परिपूर्ण था, वैसे ही दूसरी ओर नवजागरण के पूर्वाभास से भी युक्त था। उस काल के लोगों की धर्म में अनास्था तथा अपनी संस्कृति के प्रति अवज्ञा का भाव और पाश्चात्य आदर्शों के अनुकरण की प्रबल स्पृहा सामाजिक जीवन को विभिन्न प्रकार से कलुषित कर रही थी। उन दिनों विविध समाज-सुधार आन्दोलनों तथा धार्मिक संगठनों के माध्यम से समाज तथा युवावर्ग को सुसंयत करने के काफी प्रयास हुए। इस विश्वास तथा अविश्वास के बीच दोलायमान सामाजिक तथा धार्मिक सुधार-आन्दोलनों के सन्धिक्षण में श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव हुआ था। उनकी धर्मभावना तथा त्याग-तपस्यामय जीवन ने शिक्षित समाज तथा नवधारा से प्रेरित युवा पीढ़ी के मनोभावों में परिवर्तन की सृष्टि की। श्रीरामकृष्ण के धार्मिक भावों को, न केवल केशवचन्द्र आदि ब्राह्म नेताओं के प्रचार में स्थान मिला, अपितु इसके फलस्वरूप उनके जीवन में भी एक नवीन चेतना का संचार भी हुआ। परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द के रूप में प्रसिद्ध होनेवाले नरेन्द्रनाथ आदि धर्मजिज्ञासु युवक वृन्द, अपनी आध्यात्मिक पिपासा को शान्त करनेवाले किसी उत्स की खोज में ब्राह्मसमाज के माध्यम से ही श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आये थे।

स्वामी विवेकानन्द का दक्षिणेश्वर-वासी श्रीरामकृष्ण के चरणों में आगमन भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इस मिलन में एक ओर थे प्राच्य ऋषिकुल के प्रतिनिधि श्रीरामकृष्ण और दूसरी ओर थे पाश्चात्य शिक्षा में पगे

अभिनव युवावर्ग के प्रतिनिधि नरेन्द्रनाथ, जो द्वार द्वार घूमकर मानव-मन की चिरन्तन जिज्ञासा का उत्तर ढूँढ रहे थे।

अन्त में श्रीरामकृष्ण के पास आकर उन्होंने पूछा, "क्या आपने भगवान को देखा है ?" श्रीरामकृष्ण के तात्कालिक सहज, सरल तथा सुदृढ़ उत्तर ने उन्हें मुग्ध कर दिया था। वे मानो अपने मनमाफिक व्यक्ति को पा गये थे। दोनों ने एक-दूसरे को पहचानने में कोई भूल नहीं की। एक ही उद्देश्य को लेकर और उसे रूपायित करने हेतु दोनों का आगमन हुआ था। प्रथम दर्शन के समय ही श्रीरामकृष्ण ने पहचान लिया कि नरेन्द्रनाथ 'कौन' हैं और 'किस हेतु' उनका आगमन हुआ है। दूसरी ओर नरेन्द्रनाथ ने भी क्रमशः श्रीरामकृष्ण का वास्तविक स्वरूप जान लिया था। विवेकानन्द ने जैसे अपने गुरु की परीक्षा करके उन्हें समझा था, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण ने भी अपने उत्तराधिकारी नरेन्द्रनाथ को अपनी इच्छानुसार ऐसा गढ़ा था, कि उनमें जरा-सा भी खोट न रह जाय। नरेन्द्रनाथ सहज ही अपने गुरुदेव को स्वीकार नहीं कर सके थे, परन्तु उनके प्रेम के सम्मुख उन्हें हथियार डाल देने पड़े थे। परवर्ती काल ने विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण के विषय में कहा था — 'Love Personified' — प्रेम की प्रतिमूर्ति। इस प्रेम के द्वारा ही श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को बाँधकर उन्हें अपने भावी संघ की स्थापना का गुरु-दायित्व सौंप दिया था।

विभिन्न धर्मों तथा पथों की साधना करने के बाद श्रीरामकृष्ण के जीवन में जिस धर्म-समन्वय रूपी संगीत की रचना हुई थी, उसे वे उदारतापूर्वक सबमें वितरित कर देना चाहते थे और इसके लिए वे एक ऐसे सुयोग्य आधार की खोज में थे, जिसके माध्यम से वह विश्व-कल्याण हेतु सुदृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित हो जाय। इसीलिए अपनी आध्यात्मिक सम्पदा को नरेन्द्रनाथ में संचारित करके, उन्होंने जीव-कल्याण हेतु एक नये ही रूप में आत्मप्रकाश किया था। नरेन्द्रनाथ ने चिर काल तक समाधि की गहराइयों में डूबे रहने की इच्छा व्यक्त की थी। इस पर श्रीरामकृष्ण ने उन्हें झिड़की देते हुए कहा था, "सोचा था कि तू एक विशाल वटवृक्ष के समान होगा, जिसकी छाया में हजारों थके-मादे पीड़ित लोग आश्रय पायेंगे, शाश्वत शान्ति तथा आनन्द का आस्वादन करेंगे। परन्तु क्या तू स्वार्थपर मनुष्य के समान केवल अपनी ही मुक्ति पाकर सन्तुष्ट रहना चाहता है ?" श्रीरामकृष्ण ने उन्हें वहाँ से लाकर जीवसेवा में लगाया। कहा, "निर्विकल्प समाधि से भी ऊँची एक अवस्था है।"

नरेन्द्रनाथ को धर्म के नये रूप का बोध हुआ। वेदान्त का एक नवीन तात्पर्य उनके सम्मुख उन्मोचित हुआ, जो बाद में 'व्यावहारिक वेदान्त' के रूप में सुपरिचित हुआ। श्रीरामकृष्ण के मुख से एक दिन सूत्र के रूप में निकला था — शिवबोध से जीवसेवा का सन्देश। उस दिन उपस्थित सभी लोगों में से केवल नरेन्द्रनाथ ही इस सूत्र का वास्तविक मर्म समझ सके थे और कहा था कि भगवान ने यदि कभी मौका दिया तो वे एक दिन इसका सर्वत्र प्रचार करेंगे।

श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के उपरान्त सुरेन्द्र की आर्थिक सहायता से नरेन्द्रनाथ ने उत्तरी कलकत्ता के वराहनगर अंचल में मठ की स्थापना की। हुगली जिले में स्थित स्वामी प्रेमानन्द के जन्मस्थान आँटपुर में नरेन्द्रनाथ के साथ उनके नौ गुरुभाइयों ने 'त्यागव्रत' ग्रहण करने का संकल्प किया था। बाद में वराहनगर मठ में उन लोगों ने शास्त्रविधि के अनुसार आनुष्ठानिक रूप से संन्यास ग्रहण किया। परन्तु नरेन्द्रनाथ को श्रीरामकृष्ण द्वारा सौंपे हुए उस 'महान व्रत' को आरम्भ तथा प्रतिष्ठित करने की तत्काल कोई सम्भावना नहीं दिख रही थी। अपने भारत-भ्रमण के दौरान भारत की अन्तरात्मा के वास्तविक स्वरूप के साथ घनिष्ठ रूप से परिचित होने के तत्काल बाद ही उसके पुनरुज्जीवन का उपाय भी उनके मन में भासित हो उठा। कन्याकुमारी में उनके ध्याननेत्रों के समक्ष भारत के चिरन्तन अतीत की प्रतिछवि उद्भासित हो उठी और वहीं पर उन्होंने अपने व्रत को पूरा करने की योजना बनायी।

शिकागो के धर्म-महासभा में भाग लेना तथा पाश्चात्य देशों पर विजय प्राप्त करना ही स्वामीजी के व्रत को पूरा करने का पहला चरण था। एक ओर जैसे बौद्ध संघ की भाँति संघबद्ध रूप से कर्म करने की बात उनके मन में जागरूक थी, वैसे ही दूसरी ओर पाश्चात्य देशों में संगठित रूप से कर्म करने के प्रयासों की सफलता देख कर भी वे विस्मित हुए। विदेश में रहते ही स्वामीजी ने अपने गुरुभाइयों और मद्रास के आलासिंगा आदि अपने भक्तों तथा अनुरागियों को अनेक पत्रों के माध्यम से संघबद्ध रूप से कार्य करने का आह्वान किया था। नर-नारायण की सेवा में जीवन अर्पित करने का आह्वान किया था। परवर्ती काल में किसी किसी गुरुभाई के मन में इस विषय में द्विधा तथा द्वन्द्व दिखलाई देने पर श्री माताजी के स्पष्ट उत्तर से सबके संशय तथा द्वन्द्व दूर हो गये थे। माँ ने कहा था, "नरेन ठाकुर के हाथ का यंत्र है। वे अपनी सन्तानों तथा भक्तों के द्वारा अपना कार्य — जगत का कल्याण करायेंगे, इसी कारण वे नरेन के

माध्यम से ये सब (सेवा-विषयक प्रेरक) बातें लिखा रहे हैं।"

भारत तथा पश्चिम के विभिन्न देशों का भ्रमण करने के बाद स्वामीजी के मन में यह स्पष्ट धारणा हो गयी थी कि, "संघ के बिना कोई भी बड़ा काम नहीं हो सकता।" पश्चिमी जगत से कलकत्ता लौटकर स्वामीजी ने बागबाजार में बलराम-भवन के दुमंजले पर स्थित हाल में अपने संन्यासी तथा गृही गुरुभाइयों तथा भक्तों की एक सभा बुलाई। १८९७ ई. की १ मई का दिन ही वह ऐतिहासिक दिवस था। उस दिन स्वामीजी ने अपनी ओजस्विनी भाषा में संघ की आवश्यकता तथा कार्यप्रणाली पर विस्तार से चर्चा करने के बाद कहा, "हम लोग जिनके नाम पर संन्यासी हुए हैं, आप लोग जिन्हें अपने जीवन का आदर्श बनाकर गृहस्थाश्रम रूपी कार्यक्षेत्र में स्थित हैं और जिनकी महासमाधि के बारह वर्षों के भीतर ही प्राच्य तथा पाश्चात्य जगत में जिनके नाम तथा अद्‌भुत जीवन का आश्चर्यजनक रूप से प्रसार हुआ है, यह संघ उन्हीं के नाम पर स्थापित होगा। हम लोग प्रभु के दास हैं। आप लोग इस कार्य में सहायक हों।" वहाँ उपस्थित गिरीशचन्द्र घोष आदि वरिष्ठ भक्तों द्वारा इस प्रस्ताव का अनुमोदन किये जाने के बाद, इस सभा ने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना करने का निर्णय कर लिया। इस ऐतिहासिक 'मई दिवस' पर विधिवत 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय — आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' — आदर्श को सामने रखकर, मानवमात्र के लिए एक कल्याणकारी धर्मसंघ के रूप में रामकृष्ण मिशन प्रकट हुआ। उसी दिन स्वामीजी ने समवेत भक्तों के समक्ष 'संघजननी' के रूप में माँ श्री सारदा देवी के नाम की घोषणा की थी। उन्होंने कहा था, "हमारा जो यह संघ बन रहा है, श्री माँ उसकी रक्षिका और पालिका हैं, वे हमारी संघजननी हैं।"

कभी श्री माँ ने श्रीरामकृष्ण के समक्ष इस संघ के लिए आन्तरिक प्रार्थना की थी। अपनी सन्तानों के हेतु सिर रखने के लिए एक जगह हो, इसके लिए वे कितना रोई थीं। उसी की फलश्रुति के रूप में यह रामकृष्ण संघ हुआ। मिशन की स्थापना हो जाने के कई दिनों बाद (५ मई, १८९७) रामकृष्ण मिशन की दूसरी सभा हुई और उसमें चर्चा के उपरान्त मिशन के उद्देश्य, व्रत, कार्यप्रणाली आदि विषयों का निर्धारण हुआ। स्वामीजी ने उस दिन घोषणा की कि मानव-कल्याण के लिए श्रीरामकृष्ण जिन तत्त्वों की व्याख्या कर गये हैं तथा उनके जीवन के द्वारा जो कुछ प्रतिपादित हुआ है और मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा पारमार्थिक उन्नति के लिए जो समस्त तत्त्व उपयोगी हो सकते हैं, उनमें

सहायता पहुँचाना ही मिशन का उद्देश्य होगा। विश्व के सभी धर्मों को एक ही अक्षय सनातन धर्म का रूपान्तरण मात्र समझकर समस्त धर्मावलम्बियों के बीच भाई-चारा स्थापित करने हेतु श्रीरामकृष्ण ने जो कार्य आरम्भ किया था, उसे परिपुष्ट करना ही इस मिशन का व्रत होगा। उन्होंने कहा था, ''मनुष्य की सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए विद्यादान आवश्यक है। इसके लिए उपयुक्त लोगों को शिक्षित करना, शिल्पियों तथा श्रमजीवियों को प्रोत्साहित करना और श्रीरामकृष्ण के जीवन द्वारा व्यावहारिक रूप से व्याख्यात वेदान्त तथा धर्म के अन्य भावों का जनसमाज में प्रचार करना होगा।

मिशन की यह कार्यप्रणाली धीरे धीरे समाज में स्वीकृत होती हुए व्यापक रूप से विस्तार को प्राप्त हो रही है। भारत के लिए इसका निर्दिष्ट कार्य था -- देश के विभिन्न प्रान्तों में आश्रमों की स्थापना, वेदान्त-धर्म का प्रचार और जन-साधारण को शिक्षित करने के उपाय करना और विदेशों के लिए कार्य था -- उपयुक्त संन्यासी भेजना, नये नये केन्द्रों की स्थापना और भारतीय धर्म-संस्कृति के प्रचार के माध्यम से प्राच्य तथा पाश्चात्य देशों के बीच घनिष्ठता स्थापित करना। स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था, ''मिशन का आदर्श तथा उद्देश्य सेवामूलक होगा और राजनीति के साथ इसका बिल्कुल भी नाता नहीं रहेगा।'' १९०९ ई. की ४ मई को रामकृष्ण मिशन का कानूनी रूप से पंजीकरण कराया गया और स्वामी ब्रह्मानन्द मिशन के अध्यक्ष चुने गये।

स्वामीजी का यह सेवादर्श केवल सामाजिक सेवा मात्र नहीं है। इसके भीतर गूढ़ तात्पर्य निहित है। मिशन के सेवाकार्य के इस तात्पर्य को प्रारम्भ में बहुत से लोग समझ नहीं सके थे। यहाँ तक कि उन दिनों साधु-समाज भी इसे हेय दृष्टि से देखा करता था। सेवा का अथ -- कुछ दुःखी-दरिद्रों को अन्न-वस्त्र देना मात्र नहीं है। निःस्वार्थ भाव से, निष्काम चित्त से इस सेवा के भाव को अपनाना होगा। तभी वह पूजा में परिणत होगा और हमारी उन्नति का पथ, निष्काम कर्म-साधना का क्षेत्र बनेगा। इस निष्काम कर्म के फलस्वरूप चित्त शुद्ध हो जाने पर ऐसा बोध होगा कि सर्वत्र -- सभी में श्री भगवान ही विराजित है। उन्होंने हमें सेवा का जो अवसर दिया है, वही हमारा सौभाग्य है। इसे स्मरण रखकर, कृतज्ञ भाव से अपने अहंकार तथा गर्व को त्यागकर यदि एक व्यक्ति की भी ठीक ठीक श्रद्धापूर्वक जरा-सी भी सेवा की जाय, तो उससे हमारा

जीवन धन्य हो जायगा। यही 'शिवज्ञान से जीवसेवा' का वास्तविक मर्म है। स्वामीजी ने रामकृष्ण मिशन के माध्यम से 'अपनी मुक्ति तथा जगत के कल्याण' को एक सूत्र में पिरोकर समाज में एक नवीन आदर्श स्थापित किया था, जिसे आज बहुत से धार्मिक संगठन कार्य रूप में परिणत करने का प्रयास कर रहे हैं।

श्री माँ की आन्तरिक प्रार्थना और श्रीरामकृष्ण के पार्षदों के त्याग-तपस्या के द्वारा गठित हुआ श्रीरामकृष्ण की आध्यत्मिक भावधारा का मूर्त विग्रह 'रामकृष्ण मिशन' आज विश्व में एक विशाल वृक्ष के रूप में सुप्रतिष्ठित है। मिशन की कार्यप्रणाली ने जहाँ एक ओर देश-विदेश के लोगों के हृदय को आन्दोलित किया है, वहीं इसने भारतीय साधु-समाज के मनोजगत में भी एक विराट् परिवर्तन उपस्थित किया है। मिशन के उदार धर्ममत ने जहाँ एक ओर विदेशी बुद्धिजीवियों को आकृष्ट किया है, वहीं भारत के विभिन्न श्रेणी के लोगों पर भी प्रभाव-विस्तार किया है। फिर राहत-कार्य, जनशिक्षा, कारीगरी शिक्षा, नारी जागरण, स्त्री-मठ की स्थापना, ग्रामों तथा आदिवासियों का उन्नयन, वैज्ञानिक पद्धति से उन्नत कृषि, उपनिषदों का अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद, साहित्य में बोलचाल की भाषा का प्रयोग, दातव्य चिकित्सालयों के द्वारा जन-स्वास्थ्य की उन्नति और सर्वोपरि प्राच्य तथा पाश्चात्य देशों के बीच सांस्कृतिक निकटता की स्थापना आदि अनेक क्षेत्रों में मिशन ने अग्रदूत की भूमिका निभायी है। रामकृष्ण मिशन के आदर्श का अनुसरण करते हुए, 'शिवज्ञान से जीवसेवा' के मंत्र से प्रेरित होकर देश-विदेश में असंख्य सेवा-संस्थाएँ स्थापित हो रही हैं।

अनेक बाधाओं तथा आपदाओं को पार करते हुए आज रामकृष्ण मिशन ने अपने अस्तित्व के सौ वर्ष पूरे कर लिए हैं। मिशन का यह सेवायज्ञ आज सभी दिशाओं में विस्तार को प्राप्त हो रहा है। सौ साल पहले स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण के भावादर्श को केन्द्र बनाकर बलराम मन्दिर में रामकृष्ण मिशन की स्थापना के माध्यम से नवजागरण का जो प्रदीप जलाया था, उसकी ज्योति आज सम्पूर्ण पृथ्वी में व्याप्त हो रही है। उसके पवित्र आलोक ने जगत में एक नवचेतना, मुक्तिसाधना के एक अभिनव पथ का आनयन किया है। जब तक मानव-सभ्यता का अस्तित्व रहेगा, तब तक श्रीरामकृष्ण के सेवायज्ञ का यह प्रदीप अपनी अनिर्वाण शिखा के द्वारा मानव-कल्याण की अपनी भूमिका निभाता रहेगा।

स्वामी विवेकानन्द का हृदय-परिवर्तन

स्वामी विदेहात्मानन्द

विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक प्रसिद्ध वकील थे। दूर दूर तक उनकी प्रसिद्धि थी और सारे भारत में उनके मुवक्किल फैले हए थे। इस कारण उन्हें आय भी अच्छी-खासी हो जाती थी। परन्तु अपने उदार-स्वभाव, दानशीलता तथा बन्धुवत्सलता की वजह से वे कुछ जोड़ नहीं पाते थे। धन जैसे बरसाती जल के समान उनके पास आता था, वैसे ही चला भी जाता था। उनके बहुत से कुटुम्बी तथा दूर के सगे-सम्बन्धी भी उनकी छत्रछाया में जीवनयापन किया करते थे। उनके आश्रितों में से कई अकर्मण्यतापूर्ण जीवन तो बिताते ही थे, ऊपर से कोई कोई भाँग, तम्बाकू आदि नशीले पदार्थो का भी सेवन किया करते थे और उनके सारे खर्च जुटाने का जिम्मा भी विश्वनाथजी के ही ऊपर था। पिता की उदारता का यह दुरुपयोग उनके तरुण पुत्र नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) से देखा न गया। एक दिन उसने टोकते हुए उनकी इस अपव्ययता का प्रतिवाद किया। भावपूर्ण हृदय से पिता ने कहा, ''बेटा, तू क्या जाने कि यह मानव-जीवन कितना दुःखमय है? जब समझेगा, तो जो लोग इस दुःखजाल से कुछ क्षणों के लिए मुक्ति पाने का प्रयास कर रहे हैं, उनकी तरफ तू भी करुणापूर्ण दृष्टि से देखेगा।''

कुछ काल बाद नरेन्द्रनाथ का परिचय दक्षिणेश्वर के सुप्रसिद्ध परमहंस श्रीरामकृष्ण देव के साथ हुआ। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि के सामने इस तरुण की प्रच्छन्न महानता छिपी न रह सकी। शुद्धसत्त्व नरेन्द्रनाथ के प्रति उन्हें एक अदम्य आकर्षण का अनुभव हुआ। कलकत्ते के युवकों के आने पर वे उनके समक्ष नरेन्द्रनाथ की प्रसंशा करते न अघाते और उनके साथ मेलजोल रखने को कहते। उनकी सलाह पर उनके युवा भक्तों में से कोई कोई उनसे मिलने भी गये, परन्तु कुछ उल्टी ही धारणा लेकर लौटे। नरेन्द्रनाथ का बाह्य आचरण तथा रंग-ढंग उन्हें पसन्द नहीं आया। श्रीरामकृष्ण ने धैर्यपूर्वक उनकी आलोचना सुनी और फिर कहा, ''हाँ, वह थोड़ा अहंकारी तथा दम्भी जरूर है, परन्तु उसका यह अहंकार अन्य लोगों के समान नहीं है, बल्कि यह उसके स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास का द्योतक है। भविष्य में जब वह जगत के दुःख-कष्टों के सम्पर्क में आयेगा,

तो उसका यह दम्भ द्रवित होकर करुणा में परिणत हो जायगा।''

समृद्धि की गोद में पलकर बड़े हुए नरेन्द्रनाथ अभी तक यह जानते ही न थे कि दुःख-कष्ट तथा अभाव किस चिड़िया का नाम है। परन्तु कोई भी चिर काल तक सुख नहीं भोग पाता। चक्र के समान सुख के बाद दुःख तथा दुःख के बाद सुख का आगमन अवश्यम्भावी है और फिर दुःख तथा अभाव चिरकाल से ही विश्व के महापुरुषों का एक महान शिक्षक रहा है। नरेन्द्रनाथ के जीवन में भी इस शिक्षा का सूत्रपात हुआ। जब वे बी. ए. की परीक्षा में बैठने की तैयारी कर रहे थे, तभी उन पर मानो वज्रपात हुआ – सहसा उनके पिताश्री का देहावसान हो गया। फिर विपत्ति भी कभी अकेली नहीं आती! नरेन्द्रनाथ को असहाय देखकर उनके पिता के टुकड़ों पर पलनेवाले सम्बन्धी ही उन्हें अपने पैतृक सम्पत्ति तथा मकान से बेदखल करने की साजिश करने लगे। घर में माँ, बहन तथा छोटे भाई आधा पेट खाकर दिन गुजारते और नरेन्द्रनाथ नौकरी की तलाश में सारे दिन नंगे-पाँव कलकत्ते की गलियों की खाक छानते। अब उन्हें जगत की वास्तविकता का – इसके अस्तित्व के दूसरे अशुभ पक्ष का बोध हुआ। कभी कभी तो उन्हें लगता कि यह ईश्वर की नहीं, बल्कि किसी शैतान की रचना है। जाके पाँव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई – अब इतने कष्ट तथा मुसीबतें झेलकर उबरने के बाद नरेन्द्रनाथ दूसरों की पीड़ा को अपने अन्तर में अनुभव करना सीख चुके थे।

अपने गुरुदेव भगवान श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के उपरान्त वे एक अकिंचन परिव्राजक के रूप में एकाकी ही सम्पूर्ण भारत की पदयात्रा को निकल पड़े। साथ में संगी के रूप में थे दण्ड-कमण्डलु, दो-चार पुस्तकें तथा एक संवेदनशील हृदय। भारत की निर्धन, दलित तथा पीड़ित जनता की दुरवस्था का उन्होंने अपने नेत्रों से प्रत्यक्ष अवलोकन किया। उनके बीच रहकर उन्होंने उन लोगों के सुख-दुःख में हिस्सा बँटाया। बीच-बीच में उन्होंने राजा-महाराजाओं तथा धनिकों के साथ भी रहकर उन्हें निर्धन जनता की उन्नति में योग देने को प्रेरित करने का प्रयास किया। परन्तु प्रायः सर्वत्र उन्हें लोगों की हृदयहीनता का ही परिचय मिला।

तरह तरह के कड़वे-मीठे अनुभव लेते हुए आखिरकार वे भारत के अन्तिम छोर पर स्थित कन्याकुमारी जा पहुँचे। संवेदना से अभिभूत उनके हृदय में

बारम्बार यह प्रश्न उठ रहा था – क्या इनके उद्धार का कोई भी उपाय नहीं है ? माता कन्याकुमारी के मन्दिर में दर्शन करने के बाद वे समुद्र की उफनाती लहरों के बीच तैरकर एक शिलाखण्ड पर जा पहुँचे और वहीं गम्भीर ध्यान में तल्लीन हो गये। वेदान्त में कथित सर्वोच्च निर्विकल्प समाधि की अनुभूति तो उन्हें पहले ही हो चुकी थी । अतः आज उनके ध्यान का विषय 'ईश्वर' नहीं, बल्कि मनुष्य था – भारत की कोटि कोटि दलित जनता तथा उनके उद्धार का उपाय ही आज उनके ध्यान का विषय था । भारतवर्ष का सारा गौरवमय अतीत तथा दुर्दशापूर्ण वर्तमान मानो चलचित्र के समान उनके मनश्चक्षुओं के सामने से होकर गुजर गया । गहन विचार करने के बाद उन्होने समझा कि दोष धर्म का नहीं, बल्कि उसके ठीक ठीक धारणा तथा पालन करने के अभाव में ही भारतवर्ष की यह दुर्गति हुई है । फिर 'भूखे पेट भजन भी तो नहीं होता' – अतः अपने निर्धन देशवासियों के बीच धर्मप्रचार करना भी तो कोरा पागलपन है । पहले उनके लिये रोटी-कपड़े की व्यवस्था करनी होगी और उसके बाद धर्मप्रचार की बारी आयगी । राष्ट्र को उसका खोया हुआ व्यक्तित्व लौटा देना होगा, सर्वसाधारण को शिक्षा देकर ऊपर उठाना होगा । इस कार्य को आरम्भ करने के लिए पहले तो मनुष्य चाहिये और उसके बाद प्रभूत मात्रा में धन । मनुष्य तो अपने गुरुभाइयों तथा शिष्यों के रूप में उनके पास थे, परन्तु धन कहाँ मिले ! भारतीय धनाढ्य वर्ग से इस कार्य के लिये आर्थिक सहायता की आशा करना हवा में किले बनाने के समान निरर्थक था । उन्होने निश्चय किया कि वे स्वयं ही अमेरिका जाकर धनोपार्जन करेंगे और उसे लाकर अपने निर्धन देशवासियों के उत्थान में लगा देंगे ।

अमेरिका के लिए प्रस्थान करने के पूर्व राजस्थान के माउण्ट आबू में उनकी अपने कुछ गुरुभाइयों से भेंट हुई । बातचीत के दौरान उन्होने अपने एक गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द से कहा था, "हरि भाई, मैं अभी तक तुम्हारा वह तथाकथित धर्म बिल्कुल भी नहीं समझ सका हूँ, परन्तु मेरा हृदय अत्यन्त विशाल हो गया है। अब मैं दूसरों की पीड़ा अनुभव करना सीख गया हूँ । विश्वास करो, मुझमें करुणा का उदय हुआ है ।" इतना कहते कहते उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया और आँखें डबडबा आयीं ।

परवर्ती काल में उपरोक्त घटना का वर्णन करते हुए स्वामी तुरीयानन्द भावविह्वल हो उठे थे। कुछ देर भीगे नयनों के साथ मौन कहने के बाद एक दीर्घ निःस्वास लेकर वे कहने लगे, "स्वामीजी जब ये बातें कह रहे थे, जानते हो उस समय मेरे मन में क्या चल रहा था ? मैं सोच रहा था कि बुद्धदेव ने भी तो ऐसा ही अनुभव किया था और ऐसी ही बातें कही थीं। ...मैं स्पष्ट देख रहा था कि जगत् की दुःखराशि से स्वामीजी का हृदय स्पन्दित हो रहा है। उनका हृदय मानो एक बड़ी कड़ाही थी, जिसमें जगत् के सारे दुःखों का पकाकर एक मलहम तैयार हो रहा था।"

अमेरिका के शिकागो नगरी में आयोजित धर्ममहासभा में उनके पहले दिन के व्याख्यान ने ही उनकी यशपताका को चतुर्दिक फैला दिया। जिन विवेकानन्द को वहाँ धनाभाव के कारण, सभा के पूर्व जाड़े की ठण्डी रात ठिठुर-ठिठुर कर मालगाड़ी के एक डब्बे में ही गुजारनी पड़ी थी, उन्हीं के स्वागत में अब शिकागो नगर के अनेक आलीशान अट्टालिकाओं के द्वार उन्मुक्त हो गये। उनकी कल्पना के अतीत, विलासताओं से सज्जित एक आलीशान कमरे में उनके निवास की व्यवस्था हुई। परन्तु इस ठाठ-बाट से युक्त परिवेश ने उनके चित्त में आनन्द का उन्मेश करना तो दूर, उनके हृदय की वेदना को और भी उभार दिया। मोटे गद्दों से युक्त बिछौना उन्हें काँटों की सेज-सा चुभने लगा। बिस्तर पर उनसे लेटा न गया। वे अपने देशवासियों की दुर्दशा का स्मरण कर बिलखने लगे — "कहाँ अमेरिकावासियों की यह विलासिता, यह वैभवपूर्ण जीवन और कहाँ मेरे निर्धन देशवासी, जो अन्न-वस्त्र के अभाव में हाहाकार कर रहे हैं !" दुःख के आवेग में वे बिस्तर से उतरकर फर्श पर ही लेट गये और कहने लगे, "माँ, मैं इस नाम-यश को लेकर क्या करूँगा, जबकि मेरे देशवासी गरीबी की दलदल में फँसे हुए हैं। उधर मुट्ठी भर अनाज के अभाव में हम करोड़ों भारतवासी भूखों मर रहे हैं और यहाँ लोग अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिए लाखों रुपये खर्च कर रहे हैं। भारत की गरीब जनता को कौन उठाएगा ? कौन उन्हें रोटी देगा ? माँ, मैं कैसे उनकी सहायता करूँ ? मुझे मार्ग दिखा।"

कई वर्षों के कठोर परिश्रम के द्वारा अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में कुछ धन एकत्र करने के बाद ठीक सौ वर्ष पूर्व १८९७ ई. में वे भारत लौटे और उसी वर्ष १ मई को 'रामकृष्ण मिशन समिति' के स्थापना की घोषणा की। 'बहुजन हिताय

बहुजन सुखाय' इस संस्था की स्थापना करने के बाद तत्काल इस संगठन ने उत्तरी बंगाल के मिदनापुर अंचल में फैली भयानक अकाल से जनता-जनार्दन को राहत पहुँचाने का कार्य आरम्भ कर दिया ।

उसके तत्काल बाद ही अपने कुछ पत्रों में उन्होने अपने सेवा-दर्शन को रेखांकित किया था । ३० मई को उन्होंने लिखा था - "निःस्वार्थ सेवा ही धर्म है और बाह्य विधि, अनुष्ठान आदि केवल पागलपन है; यहाँ तक कि अपनी मुक्ति की अभिलाषा करना भी अनुचित है । मुक्ति केवल उन्हीं के लिए है, जो दूसरों के लिए अपना सर्वस्व त्याग देते हैं और जो लोग 'मेरी मुक्ति' 'मेरी मुक्ति' की अहर्निश रट लगाये रहते हैं, वे अपना वर्तमान तथा भावी कल्याण नष्ट करके इधर-उधर भटकते रह जाते हैं ।" फिर ४ जुलाई के अपने पत्र में उन्होने लिखा, "दुर्भिक्ष-ग्रस्त लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था करने में ही मेरी सारी शक्ति तथा पूँजी समाप्त होती जा रही है । ... बुद्धदेव के बाद यह पहली बार पुनः देखने को मिल रहा है कि ब्राह्मणों की सन्तानें हैजाग्रस्त अन्त्यजों की शय्या के निकट उनकी सेवा-शुश्रूषा में संलग्न हैं । भारत में इस समय व्याख्यान तथा धर्मप्रचार से कोई विशेष कार्य नहीं होगा । इस समय सक्रिय धर्म की आवश्यकता है ।"

६ जुलाई को अपने अमेरिकी मित्र फ्रांसिस लेगेट को अपने हृदय-परिवर्तन की बात स्वीकार करते हुए उन्होने लिखा, "मेरा विचार है कि मैं धीरे धीरे उस अवस्था की ओर बढ़ रहा हूँ, जहाँ खुद 'शैतान' को भी, अगर वह हो, तो मैं प्यार कर सकूँगा । बीस वर्ष की अवस्था में मैं अत्यन्त असहिष्णु तथा कट्टर था । कलकत्ते में सड़कों के जिस किनारे पर थियेटर हैं, मैं उस ओर के फुटपाथ पर ही नहीं चलता था । अब तैंतीस वर्ष की आयु में मैं वेश्याओं के साथ एक ही मकान में ठहर सकता हूँ और उनको तिरस्कार का एक शब्द भी कहने का विचार मेरे मन में नहीं आयेगा । क्या यह अधोगति है ? अथवा मेरा हृदय विस्तृत होता हुआ मुझे उस विश्वव्यापी प्रेम की ओर ले जा रहा है, जो साक्षात् भगवान का स्वरूप है ।

और ९ जुलाई को वे लिखते हैं, "मैं जानता हूँ कि मेरा कार्य समाप्त हो चुका है – आयु के अधिक से अधिक तीन या चार वर्ष और बचे हैं । मुझे अपनी मुक्ति की इच्छा अब बिल्कुल नहीं । सांसारिक भोग तो मैने कभी चाहे

ही नहीं। मुझे सिर्फ अपने यंत्र को मजबूत और कार्योपयोगी देखना है और फिर निश्चित रूप से यह जानकर मैं सो जाऊँगा कि कम-से-कम भारत में मैने मानवजाति के कल्याणार्थ एक ऐसा यंत्र स्थापित कर दिया है, जिसका कोई शक्ति विनाश नहीं कर सकती, और आगे क्या होनेवाला है इसकी परवाह नहीं करूँगा। मेरी अभिलाषा है कि मैं बारम्बार जन्म लूँ और हजारों दुःख भोगता रहूँ, ताकि मैं सम्पूर्ण आत्माओं के समष्टि रूप उस एकमात्र ईश्वर की सेवा कर सकूँ, जिसकी सचमुच सत्ता है और जिसका मुझे विश्वास है। सर्वोपरि सभी जातियों तथा वर्णों के पापी-तापी तथा दरिद्र रूपी ईश्वर ही मेरे विशेष आराध्य हैं।

"कभी कभी मुझमें एक प्रकार का दिव्य भावावेश होता है। उस समय ऐसी इच्छा होती है कि मैं हर एक प्राणी को, हर एक वस्तु को आशीर्वाद दूँ – प्रत्येक से प्रेम करूँ, गले से लगा लूँ और देखता हूँ कि बुराई एक भ्रान्ति मात्र है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीजी के बचपन के स्वाभिमान का हिमालय, जगत् के दुःख-कष्टों से तप्त होकर करुणा की भागीरथी के रूप में प्रवाहित हो चला था। और तब से पिछले सौ वर्षों के दौरान केवल भारतवासी ही नहीं, अपितु अन्य अनेक देशों के लोग भी इसकी सैकड़ों शाखाओं में बहती शीतल तथा पुनीत धारा में अवगाहन करके शान्ति तथा आनन्द की अनुभूति करते रहे हैं।

सेवा ही श्रेयस्कर है

भोजन द्वारा तुम अपने शरीर को पुष्ट करते हो, परन्तु यदि तुमने उस शरीर को दूसरों की भलाई के लिए अर्पण नहीं किया, तो उससे क्या लाभ? इसी प्रकार तुम पुस्तकें पढ़कर अपने मस्तिष्क को पुष्ट करते हो, परन्तु यदि समस्त संसार के हित के लिए तुमने उस मस्तिष्क को लगाकर आत्मत्याग नहीं किया, तो उससे भी कोई लाभ नहीं। चूँकि सारा संसार एक है और तुम इसके एक अत्यन्त छुद्र अंश हो, इसीलिए केवल इस तुच्छ व्यक्तित्व के अभ्युदयार्थ यत्न करने की अपेक्षा उत्तम होगा कि तुम अपने करोड़ों भाइयों की सेवा करते रहो।

— स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण मिशन का संक्षिप्त प्रतिवेदन १९९५-९६

रामकृष्ण मिशन की ८७वीं वार्षिक साधारण सभा बेलुड़ मठ में २२ दिसम्बर १९९६ ई० को अपराह्न में ३.३० बजे सम्पन्न हुई। उसमें प्रस्तुत किये गये प्रतिवेदन का सार-संक्षेप निम्नलिखित है —

वर्तमान (मार्च, १९९६) में बेलुड़ मठ के मुख्यालय को छोड़कर रामकृष्ण मिशन तथा मठ की कुल १६० अधिकृत शाखाएँ विश्व भर में फैली हुई हैं। इनमें से मिशन के ६८ केन्द्र भारत में, ८ बँगलादेश में और १-१ फीजी, मारीशस, सिंगापुर, श्रीलंका तथा स्विटजरलैण्ड में स्थित हैं। उसी प्रकार रामकृष्ण मठ के भी ७८ केन्द्र भारत तथा विदेशों में कार्यरत हैं।

नवनिर्माण : आलोच्य वर्ष के दौरान पोर्ट ब्लेयर (अंदमान) में एक शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संस्थान, मद्रास के मिशन आश्रम के अन्तर्गत एक उच्च माध्यमिक विद्यालय के भवन और बेलुड़ मठ में एक नये रामकृष्ण-संग्रहालय के भवन की आधारशिलाएँ रखी गयीं। बेलुड़ के ही सारदापीठ तथा कोयम्बटूर के विद्यालय में दो सभागारों का द्वारोन्मोचन हुआ। कालडी मिशन में एक बालगृह तथा सिलाई विद्यालय के लिए एक नये भवन का उद्घाटन हुआ।

महत्वपूर्ण घटनाएँ : शिकागो आर्ट इन्स्टीट्यूट के जिस फुलर्टन सभागृह में, स्वामी विवेकानन्द ने सन् १८९३ ई. में अपना युगान्तरकारी व्याख्यान दिया था, वहाँ उनके सम्मान में एक फलक का अनावरण किया गया। शिकागो के महत्वपूर्ण सड़क 'मिशीगन एवेन्यू' के एक अंश का 'विवेकानन्द वे' (मार्ग) के रूप में नया नामकरण किया गया।

राहत तथा पुनर्वास कार्य : मिशन ने भारत के छह राज्यों में वृहत् पैमाने पर राहत एवं पुनर्वास कार्य किये, जिनमें लगभग १.२१ करोड़ रुपये व्यय हुए। महाराष्ट्र के लातूर जिले में चलायी गयी पुनर्वास योजना के अन्तर्गत ६४६ भूकम्प-प्रतिरोधी मकान, ३ समान-मन्दिर, ३ विद्यालय-भवन तथा ६ शिशु-उद्यानों का निर्माण-कार्य पूरा करने के बाद उसकी समाप्ति कर दी गयी।

कल्याण-कार्य : निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति, वृद्ध एवं असहाय लोगों को आर्थिक सहायता इत्यादि कल्याण-कार्यों में करीब ८४ लाख रुपये खर्च हुए।

चिकित्सा कार्य : ९ अस्पतालों तथा ९२ चिकित्सा-केन्द्रों द्वारा ५० लाख से

भी अधिक रोगियों की चिकित्सा की गयी और इस कार्य में लगभग १३ करोड़ रुपये व्यय हुए। इसके अतिरिक्त मुख्यतः बिना चिकित्सा-सेवा वाले केन्द्रों द्वारा १० नेत्र- शिविरों का आयोजन किया गया, जिनमें ७५५ मोतियाबिन्द के आपरेशन किये गये।

शैक्षणिक कार्य : हमारे शिक्षा-संस्थानों ने — माध्यमिक से स्नातकोत्तर तक की परीक्षाओं में उत्कृष्ट परिणाम हासिल किये। पश्चिमी बंगाल की माध्यमिक परीक्षा में हमारे ५४० छात्रों ने स्टार (७५ प्रतिशत या उससे अधिक अंक) प्राप्त किये। छात्रों की कुल संख्या लगभग १.६० लाख थी, जिनमें ५७ हजार से भी अधिक छात्राएँ थीं। इस मद में प्रायः ३६ करोड़ रुपये खर्च हुए।

पिछड़े अंचलों में कार्य : मिशन ने ग्रामीण एवं आदिवासी विकास के तहत ५.५७ करोड़ रुपये व्यय किये। इसके अन्तर्गत सर्वांगीण ग्रामीण विकास योजनाओं के माध्यम से सस्ते घरों के निर्माण योजना भी शामिल है।

इस वर्ष को हम सन्तोष तथा परिपूर्णता का वर्ष कह सकते हैं।

१९९७ ई. के दौरान स्वामी विवेकानन्द के विदेशों से भारत-लौटने तथा रामकृष्ण मिशन की शताब्दियाँ देश भर में मनायी जायेंगी।

विवेकानन्द हाउस, चेन्नै

'आइस हाउस' तथा 'कैसल कर्नन' के नाम से विख्यात 'विवेकानन्द हाउस' चेन्नै (मद्रास) का एक महत्वपूर्ण स्मारक है। मैरीना के समुद्र-तट के समानान्तर चलनेवाले कामराज मार्ग पर स्थित यह भवन रामकृष्ण संघ के लिए ऐतिहासिक महत्व रखता है। १८९७ ई. में अपनी पाश्चात्य विजय-यात्रा से लौटकर स्वामी विवेकानन्द ने (६ से १५ फरवरी तक) इसी भवन में निवास करने के उपरान्त कलकत्ते के लिए प्रस्थान किया। उसी वर्ष स्वामी रामकृष्णानन्द जी द्वारा मद्रास के इसी भवन में रामकृष्ण मठ की शाखा आरम्भ की गयी, जो लगभग एक दशाब्दी तक वहीं कार्यरत रही और १७ नवम्बर १९०७ ई. को मयलापुर के वर्तमान परिसर में स्थानान्तरित हुई। स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन तथा सन्देश और भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रमुख धटनाओं तथा तथ्यों पर एक संग्रहालय तथा प्रदर्शनी बनाने के हेतु, मार्च १९९७ में तमिलनाडु सरकार ने यह ऐतिहासिक भवन मयलापुर मठ को तीन वर्षों के लिए लीज पर दे दिया है। इस भवन का तमिल में नया नाम होगा — विवेकानन्द इल्लम।